लाल कनेर

लाल कनेर

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

●

अनुवादक

हजारीप्रसाद द्विवेदी

●

राजकमल

राजकमल
प्रकाशन प्राइवेट लि:

दिल्ली - बम्बई - इलाहाबाद - पटना

प्रथम संस्करण : १९५८
द्वितीय संस्करण : १९६०

●

मूल्य दो रुपये

●

प्रकाशक
राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली

●

मुद्रक
नवीन प्रेस, फैज बाजार, दिल्ली

सूची

लाल कनेर का 'गूढ़' अर्थ

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

आज आपकी पंचायती सभा में मेरे 'नदिनी' नाटक का अभिनय है। प्रायः आपका बुलावा कभी नहीं आता, इस बार आपको कौतूहल हुआ है। डर लगता है, संवाद खत्म होने पर मुझे भीख नहीं मिलेगी, आप कुत्ते ललकार देंगे। वे संवाद को तोड़कर टुकड़े-टुकड़े कर देने की चेष्टा करेंगे। भरोसा यही है कि वे कहीं दाँत नही गड़ा सकेंगे।

आप प्रवीण हैं। चशमा चढ़ाकर भीतर से एक गूढ़ अर्थ निकाल बाहर करने की कोशिश करेंगे। मेरा निवेदन यह है कि जो गूढ़ है उसे यदि प्रकट किया जाए तो उसकी सार्थकता जाती रहती है। हृत्पिण्ड पंजर की ओट में रहकर ही काम करता है। उसे बाहर निकालकर यदि उसकी कार्य-प्रणाली की जाँच की जाए तो काम बन्द हो जाएगा। दस सिरों और बीस हाथों वाले रावण की स्वर्णपुरी लंका में एक जंगल का बन्दर जाकर पूंछ की आग से नगरी को जला आया, इस कहानी को यदि कवि-गुरु ने आज आपकी सभा में उपस्थित किया होता, तो उसके गूढ़ अर्थ की खोज के लिए आपकी पंचायतों में एक तहलका मच गया होता। आप सन्देह करते कि किसी एक सुप्रतिष्ठित विधि-व्यवस्था का मजाक उड़ाया जा रहा है। फिर भी सौ-सौ वर्षों से स्वभाव से ही सन्देहपरायण लोगों ने भी उसी रस का आस्वादन किया है जो उसका प्रकाश्य रस है—छिपे हुए अर्थ की चुटिया पकड़कर खींचतान नहीं की।

मेरे इस नाटक में एक राजा है। आधुनिक युग में मुझे यह हिम्मत नहीं हुई कि उसके एक से अधिक सिर और दो से अधिक हाथ दे सकूं। आदि कवि के समान भरोसा होता तो देता। वैज्ञानिक शक्ति से मनुष्य के हाथ-पाँव और सिर बहुत बढ़ गए हैं। मेरे संवाद के राजा उसी (वैज्ञानिक) शक्ति के द्वारा ही ग्रहण करते हैं और ग्रास करते हैं, ऐसा आभास

नाटक में मिलेगा। त्रेता-युग का बहुसंग्रही, बहुग्रासी रावण विद्युत् और वज्र धारण करने वाले देवताओं को अपने महल के सामने बाँध रखता और उनसे काम लिया करता था। उसका प्रताप चिरदिन ज्यों-का-त्यों बना रह सकता था। किन्तु उसकी देवद्रोही समृद्धि के बीच एक मानव-कन्या आ खड़ी हुई, बस उसी समय धर्म के देवता जग पड़े। मूढ़, निरस्त्र वानरों के द्वारा उन्होंने राक्षस को परास्त कराया। मेरे नाटक में ठीक ऐसा ही नहीं हुआ है किन्तु इसमें भी मानव-कन्या का आविर्भाव हुआ है। फिर कलियुग के राक्षस के साथ कलियुग के वानरों का युद्ध होगा, ऐसी एक सूचना भी है।

आदि कवि के सात काण्डों में स्थान की कमी नहीं थी, इसीलिए लंकापुरी में उन्होंने रावण और विभीषण को स्वतंत्र स्थान दिया था। किन्तु ऐसा आभास उन्होंने भी दिया था कि वे एक ही हैं, वे सहोदर भाई हैं। एक ही घोंसले मे पाप और उस पाप का मृत्युबाण दोनों लालित हुए थे। मेरे छोटे-से नाटक में रावण का जो वर्तमान प्रतिनिधि है, वह एक ही देह में रावण और विभीषण दोनों है; वह अपने को आप ही परास्त करता है।

वाल्मीकि के रामायण को भक्त पाठकगण सत्यमूलक समझते है। मेरे इस संवाद को जो लोग श्रद्धापूर्वक सुनेंगे वे भी समझ सकेंगे कि यह भी सत्यमूलक है। ऐतिहासिक के ऊपर प्रमाण एकत्र करने का भार देकर वे धोखा खाएँगे। इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि कवि के ज्ञान-विश्वास के अनुसार यह सत्य है।

घटना-स्थान के वास्तविक नाम के सम्बन्ध में भौगोलिकों से ऐकमत्य की आशा करना व्यर्थ है। स्वर्ण-लंका सिंहल में है या और कहीं, इस बात को लेकर आज कितनी ही आलोचनाएँ हो रही हैं। कवि-गुरु ने जो उस अनिर्दिष्ट, और फिर भी सुपरिनिर्दिष्ट स्वर्ण-लंका का संवाद पाया था, इसमें कोई सन्देह नहीं। क्योंकि वह स्वर्ण-लंका यदि खनिज सोना में ही किसी विशेष स्थान पर स्थापित होती तो पूंछ की आग से भस्म न होकर वह और भी उज्ज्वल हो उठती।

स्वर्ण-लंका के समान ही हमारे संवाद के घटना-स्थल का एक नाम है। कवि उसे 'यक्षपुरी' नाम से जानता है। उसका कारण यह नहीं है कि वहाँ पौराणिक कुबेर का स्वर्ण-सिंहासन है। यक्ष का धन मिट्टी के नीचे गड़ा हुआ है। यहाँ का राजा पाताल में सुरंग खोदकर उसी धन को हरण कर रहा है। इसीलिए समझदार लोग इस पुरी को दुलार करके 'लक्ष्मीपुरी' कहते हैं। यक्षपुरी क्यों नहीं कहते ? क्योंकि लक्ष्मी का भाण्डार बैकुण्ठ में है और यक्ष का पाताल में।

रामायण की कहानी के साथ जो इसका एक साम्य है, उसका यह कारण नहीं है कि मेरी कहानी रामायण से ली हुई है। असली कारण यह है कि कवि-गुरु ने ही ध्यान-योग से मेरी कहानी पहले से ही उड़ा ली है। यदि पूछो कि प्रमाण क्या है ? प्रमाण यह है कि सोने की लंका उनके जमाने में ऐसी चोटी लेकर प्रकाशमान थी, यह बात कोई नहीं मानेगा। यह जो वर्तमान काल की ही चीज़ है, इसके हज़ार प्रमाण हज़ार जगहों पर प्रत्यक्ष हो रहे हैं।

ध्यान की सेंध मारके महाकवि किस चतुराई से हाथ साफ किया करते थे उसका एक प्रमाण और दूंगा।

कर्षण-जीवी और आकर्षण-जीवी इन दो श्रेणी की सभ्यताओं में एक विषम द्वन्द्व चल रहा है, इस विषय में मैं प्रायः ही मित्रों से बात किया करता हूँ। मनुष्य को कृषि के कार्य से छुड़ाकर हरण-कार्य में खींच-खींचकर कलियुग कृषि-जीवी ग्रामों को सिर्फ उजाड़ करता जा रहा है। इसके सिवा शोषण-जीवी सभ्यता की भूख-प्यास, द्वेष-हिंसा, विलास-विभ्रम, सुशिक्षित राक्षस के ही समान है। ज़रा ध्यान देने से ही समझ में आ जाएगा कि मेरे मुख के इस वचन को आदि कवि ने अपने रूपकों में भुला-छिपाकर हथिया लिया है। नव-दूर्वादल-श्याम रामचन्द्र के वक्षसंलग्न सीता को स्वर्णपुरी के अधीश्वर दशानन ने हरण किया था, यह क्या उस ज़माने की बात है, या इस ज़माने की ? उन दिनों क्या सोने के खदान के मालिकों ने नव-दूर्वादल-विलासी किसानों की चुटिया पकड़कर खींचा था ?

और भी एक बात याद रखनी होगी। दानवीय लोभ के आकर्षण से ही कृषि आत्मविस्मृत हो रही है, उसी वृत्तान्त को ढककर कहने के लिए त्रेतायुग में सोना के मायामृग की वर्णना है। आज के जमाने के राक्षस के मायामृग के लोभ से ही तो आज की सीता उसके द्वारा हरी जा रही है। नहीं तो गाँव की पंचवटी की छाया से शीतल कुटिया को छोड़कर इस जमाने के किसान टीटागढ़ चटकल में मरने क्यों जाते हैं? वाल्मीकि के लिए ये सभी बातें परवर्तीकाल की हैं, अर्थात् 'परस्व' हैं।[1]

पंचों की प्रवीण मण्डली से यह बात कहकर मैंने अच्छा नहीं किया। वे लोग सीताचरित इत्यादि पुण्यकथाओं के प्रति मुझे अश्रद्धावान् समझकर सन्देह करते हैं। यह मेरा दोष नहीं है, उनको भी दोष नहीं दे सकता, विधाता ने उन्हें ऐसी ही बुद्धि दी है। मैं समझता हूँ, मेरे साथ बार-बार कौतुक करना ही उनका उद्देश्य होगा। मैंने पुण्यश्लोक वाल्मीकि के प्रति कलंक का आरोप किया है, इसलिए शायद वे फिर एक बार मुझे जाति-बहिष्कृत करने का प्रयत्न करेंगे। भरोसे की बात यह है कि कृत्तिवास नामक एक और बंगाली कवि मेरे दल के हैं।

इस प्रसंग में एक बात मन में उठ रही है। आधुनिक समस्या नाम की कोई वस्तु है ही नहीं, मनुष्य की सभी गुरुतर समस्याएँ चिरकाल की हैं। उसका प्रमाण हमें रत्नाकार की कहानी में मिलता है। रत्नाकर शुरू में डाकू थे, फिर डकैती का रोजगार छोड़कर राम के भक्त बने। अर्थात् घर्षण-विद्या के प्रभाव को काटकर कर्षण-विद्या में जब दीक्षित हुए, तभी सुन्दर के आशीर्वाद से उनकी वीणा बज उठी। यह तत्त्व उस जमाने के लोगों के चित्त में भी जगा था। एक समय जो डाकू थे, वही जब कवि हुए तभी, आरण्यकों से स्वर्णलंका के पराभव की वाणी उनके कंठ से इतने जोरों के साथ बजी थी।

१. 'परस्व' अर्थात् दूसरे का धन। परन्तु यहाँ इस शब्द के बंगला उच्चारण 'परश्व' पर श्लेष है। 'परश्व', अर्थात् आगामी परसों। —ह० प्र० द्वि०।

एकाएक ऐसा लग सकता है कि रामायरण की कथा एक रूपक है। विशेष तौर पर जब रामायरण के दो नामों के दो विपरीत अर्थ स्पष्ट ही दिखते हैं। राम का अर्थ है आराम, शान्ति; रावरण का चीत्कार, अशान्ति। एक में नये अंकुर का माधुर्य है, पल्लव की मर्मरध्वनि है; तो दूसरे में लोहे के बँधे रास्ते पर से भागते हुए दैत्य-रथ के सिंगे की आवाज़ है। किन्तु तो भी रामायरण रूपक नहीं है और मेरे 'लाल कनेर' का संवाद भी रूपक नाट्य नहीं है। रामायरण मुख्य रूप में मनुष्य के सुख-दुःख, विरह-मिलन, अच्छे-बुरे के विरोध की कथा है; मानव की महिमा उज्ज्वल करके रखने के लिए ही चित्रपट पर दानव की पट-भूमिका है। यह विरोध एक तरफ तो व्यक्तिगत मानव का है और दूसरी तरफ श्रेरणीगत मनुष्य का। राम और रावरण एक तरफ तो दो व्यक्तिगत रूप हैं और दूसरी ओर मनुष्य की दो श्रेरिणयों के रूप हैं। मेरा नाटक भी एक ही समय व्यक्तिगत मनुष्य का भी है और मनुष्यगत श्रेरणी का भी। श्रोतागरण यदि कवि की सलाह की अवज्ञा न करें, तो मैं कहूँगा कि श्रेरणी की बात भूल जाइए। यही याद रखिए कि 'लाल कनेर' का सारा संवाद 'नंदिनी' नामक एक मानवी का चित्र है। चारों ओर के पीड़न के भीतर से उसका आत्म-प्रकाश है। फ़व्वारा जिस प्रकार संकीर्णता के पीड़न से हँसी, आँसू और कलध्वनि के साथ ऊपर उच्छ्वसित हो उठता है, उसी प्रकार। उसी चित्र की ओर यदि सम्पूर्ण रूप से देखते रहेंगे, तो शायद कुछ रस आपको मिल जाएगा। नहीं तो 'लाल कनेर' की पँपड़ियों के भीतर अर्थ खोजने जाकर कुछ अनर्थ घट जाए तो उसकी जवाबदेही कवि की नहीं होगी। नाटक के भीतर ही कवि ने आभास दिया है कि माटी खोदकर जिस पाताल में खनिज धन खोजा जाता है, नंदिनी वहाँ की नहीं है; मिट्टी के ऊपर जहाँ प्राणों का, रूप का नृत्य है, जहाँ प्रेम की लीला है, नंदिनी उसी सहज सुख के, सहज सौन्दर्य के देश की है।

मनुष्य और मशीन

'लाल कनेर' के संदेश पर एक दृष्टि

गुरुदयाल मल्लिक

आज का जमाना मशीन का जमाना है। अपने दुरारूढ़ चक्रों में इस मशीन ने मनुष्य की पवित्र सत्ता को पीस डाला है। देव मन्दिर को उसने आज अपावन कर रखा है। वह छल से नाना-रूप धारण कर लेती है और रक्तबीज की तरह उसके एक रूप का विनाश अनेक रूपों को जन्म देता है; उसकी विभीषिका कभी चुकने नहीं आती।

एक ओर वह मनुष्य की पाशविकता के लिए खूराक जुगाती है, दूसरी ओर उसकी अन्तरात्मा की उज्वलता को—उसकी संवेदना को—बुरी तरह लूट लेती है। इस मशीन ने उस अनन्त वैचित्र्य को ही खत्म कर डालने का प्रयत्न किया है जो सम्पूर्ण सौन्दर्य का प्राण है। केवल हमारी वेष-भूषा, खान-पान और रीति-व्यवहार में ही इसने लोहे की कठिन जड़ता का संचार किया हो सो नहीं; हमारे भाव, आवेग, चिंता और आदर्श को भी एक वैचित्र्यहीन-निष्प्राणता द्वारा अचल कर रखा है।

मशीन के इस बेसुरे घर्घर शब्द का सृष्टि के छंद के साथ कहीं मेल नहीं है। उसने उर्वशी को लांछित किया है देव-सभा में; छल से भुलाकर उसके नृत्य की लय और ताल को बार-बार भंग कर डाला है। दुर्वासा की तरह यह मशीन हमारे हृदय का अर्घ्य माँगने आई है; हमारे सहज प्रेममय स्वागत के लिए पल-भर रुकने का अवकाश उसके पास नहीं है; वह तो प्रेम को वसूल करना ही जानती है। इसीलिए अर्घ्य से वंचित होकर उसने हमें आनन्द के जगत् से निर्वासित होने का अभिशाप दे डाला है।

मशीन का शासन निरंकुश है—राक्षसी है। उसके प्रकाण्ड पेट का गड्ढा कभी भर नहीं सकता,—वह चिर-बुभुक्षु है। उसके भयंकर मस्तक से नरक का भयावह धुंआ लगातार निकल रहा है। उसके भूखे पेट का

कहीं अन्त नहीं मिलता। किन्तु जिस तरह तनिक-सी अतिरंजना भी संगीत की एकतानता से सही नहीं जाती, वैसे ही मनुष्य-मनुष्य के सहज और स्वच्छ सम्बन्ध पर भी मशीन के अनवरत आघात से चोट पहुँचती है। स्वल्पायु जूही के छोटे से फूल में सृष्टि का छन्द अधिक प्रकाश पाता है, क्योंकि उसने अपने आवेग को शान्त और संयत कर रखा है। जूही की सारी सत्ता गोपन है। दानव का आकार विपुल है, लोभ बृहत् है। वहाँ संयम नहीं है, केवल अशेष क्षुधा और अदम्य कामना का ही चीत्कार है; इसी कारण सौन्दर्य वहाँ अपने को व्यक्त नहीं कर पाता। रवीन्द्रनाथ सर्वशः कवि थे और इसीसे स्वभावतया सुकुमार किंतु सजीव जूही के ही पक्ष में थे, बृहदाकार मशीन-दानव के नहीं।

मशीन के प्रभाव से हमारा जीवन, हमारे भाव और चिंता की धारा एक यांत्रिक प्रक्रिया की पुनरावृत्ति-मात्र रह गई है। मनुष्य की मनुष्यता उससे छिन गई है। स्कूल हो या कॉलेज, दफ़तर हो या सेक्रेटेरियट, हर जगह मनुष्य का उल्लेख—उसकी गिनती—उसके हाथ-पैरों से या अधिक-से-अधिक मस्तिष्क से की जाती है। किन्तु संचालकों का दल कभी श्रमिकों के भीतर हृदय के अस्तित्व का गुमान भी नहीं करता। संख्या तो केवल आकार को गिन सकती है, प्राणों को नहीं, क्योंकि प्राण एक हैं। तब भी मनुष्य के इसी प्राणवान् हृदय में ही सृष्टि के सौन्दर्यबोध की शक्ति होती है, आनन्द को पहचानने की, प्रेम का अनुभव करने की क्षमता होती है। आधुनिकों का आदर्श है मधुमक्खी, जो हमेशा मधु-संचय में ही व्यस्त रहती है, लापरवाह तितली नहीं 'जिसके पास पद्म-पुष्प को प्यार करने का विपुल अवकाश है।'

रवीन्द्रनाथ मनुष्य के व्यक्तित्व को प्रेम और श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे। चाहे कोई संगठित कार्य हो, चाहे साम्प्रदायिक पूजा, अथवा लाल फीते से बँधी शासन-व्यवस्था की फौजी हुकूमत ही क्यों न हो, यदि मनुष्य की सहज सत्ता के विकास में उससे बाधा पहुँचती, तो रवीन्द्रनाथ उसे सह नहीं सकते थे। उससे उनके मर्म में चोट लगती थी। पश्चिमी देशों की

अन्ध राष्ट्रीयता, भारतीय सरकार की निर्मम शासन-व्यवस्था और फैक्टरियों का अमानुषीय प्रबन्ध—सबसे उनके भीतर विद्रोह बज उठता था और उनके कण्ठस्वर में अनायासही मे घनगर्जन का सुर आ मिलता था। वर्तमान सभ्यता की सबसे बड़ी असफलता यही है कि उसने मशीन के दानव के साथ मनुष्य को बुरी तरह लड़ा दिया है; मनुष्य के लिए मानो सब तरफ़ से लाचारी-ही-लाचारी है, हार-ही-हार है। मानवीय व्यक्तित्व के नाना पहलुओं के बारे में हम आज बेखबर हो गए हैं, और अपनी दिव्य सत्ता को, अमर उत्तराधिकार को, एकबारगी भूल ही गए हैं। तब भी कभी-कभी रवीन्द्रनाथ अथवा गांधीजी जैसे महामानव हमारे बीच प्रकट हो जाते हैं, जो हमारी उसी दिव्य सत्ता को उद्‌बुद्ध कर जाते हैं, हममें नये प्राण फूंक जाते हैं। हम अपना नवीन संगठन करना चाहते हैं, धीमी गति से ही सही, किंतु सुदृढ़ आधार पर।

रवीन्द्रनाथ के 'लाल कनेर' नाटक को पढ़ते हुए कुछ ऐसे ही विचार मन में जाग उठते हैं। यह रचना किसी राजनीतिक या सामाजिक समस्या-विशेष का निरूपण अथवा समाधान नहीं है; वह तो मशीन द्वारा निर्दिष्ट आधुनिक जीवन की दम घोंटनेवाली व्यवस्था और अव्याहत अत्याचार के मर्म को भेदकर उसकी विभीषिका का बोध करानेवाली कवि-दृष्टि है। यदि कथानक को समस्या का ही रूप देना हो, तो कहा जा सकता है कि इस नाटक में रवीन्द्रनाथ ने संगठित अथवा व्यष्टिगत जीवन के उस वर्तमान रूप पर प्रकाश डाला है, जो मनुष्य को जड़ कर देता है, उसे केवल एक-दो-तीन-चार की संख्या से अधिक कुछ नहीं मानता। मानों वह टीन के डिब्बों में पैक की हुई वस्तु-मात्रा हो, जिसे चाहे जिस नम्बर से पुकारा जा सकता है। इसीलिए उन्होंने कहीं कहा है : मनुष्य निर्दय होते हैं किंतु मानव करुणावान् है।

संगठित जीवन की यही निर्मम व्यवस्था इस रूपक में यक्षपुरी के अगोचर और दुर्गम राजा के रूप में प्रस्तुत की गई है। वह राजा अपने ही बनाये हुए जटिल जाल के आवरण के अन्तराल में निवास करता है। स्वर्णपुरी के अक्लान्त कर्मियों के निकट वह केवल एक जनश्रुति-मात्र है।

इस स्वर्णपुरी में सुवर्ण के क्रूस पर प्रभु यीशु को जीवित टलका दिया गया है। इस मिथ्या राजा के विपरीत विरोध करने के लिए सम्पूर्ण मानव-रूप में नंदिनी का ग्राविर्भाव हुग्रा। नारी-सुलभ सहज-बुद्धि से नंदिनी जान गई है कि जीवन का चरम विकास प्रेम में ही है। उसके संस्पर्श में संजीवनी शक्ति है—वह छूते ही संख्या को नामों में, 'डिब्बों' को व्यक्तियों में परिणत कर देती है। चिर ग्रतृप्त लोभ के जटिल संगठन के साथ नंदिनी, रंजन, ग्रौर विशू जैसी सरल ग्रात्माग्रों का संघर्ष होता है, जिसमें ग्रन्त में इन्हीं भोले मानव प्राणियों की विजय होती है। रवीन्द्रनाथ का ग्रत्यंत दृढ़ विश्वास था कि नारी में वह शक्ति सदा जाग्रत है, जो हमारी इस लोभ-संकुल, मशीन-निर्मित सभ्यता को गले तक डुबानेवाले मोह ग्रौर विनाश के पंक से मुक्त करेगी। इसीलिए इस रूपक की नायिका नंदिनी है।

कई बरस बीते, रवीन्द्रनाथ ने एक चित्र ग्राँका था, जिसमें कठिन पाषाणमयी भूमिका पर एक सुकोमल फूल—बहुत करके लाल कनेर का फूल—स्वच्छ सूर्यालोक में खिलता हुग्रा दिखाई पड़ रहा था। चित्र के तले ये पंक्तियाँ लिखी हुई थीं :

"पत्थरों के स्तूपीकृत बोझ ने धरती की ग्रावाज़ को दबा रखा था,
कि पहला फूल खिला ग्रौर उसका ग्रर्थ प्रकाशित हो गया।"

सोने के विपुल ढेर के नीचे दम घुटकर मर जाने वाली मनुष्यता को नंदिनी ने इसी तरह मुक्त किया है।

ग्राज की दुनिया की तरफ एक नज़र देख लेने पर ही मालूम हो जाएगा कि 'लाल कनेर' के भीतर कवि की कैसी निविड़ वेदना—ग्रौर कैसा उदात्त संदेश छिपा हुग्रा है। मनुष्य ग्राज शान्ति के लिए प्यासा है; किंतु यदि प्यास सचमुच ही बुझानी हो, तो उसे किसी बुद्ध या यीशु की शरण लेनी होगी। बड़े-बड़े सभा-भवनों ग्रौर राष्ट्र-संघों से उसे उसी तरह प्यासा लौटना होगा, जिस तरह तृषित यात्री समुद्र के तरह से ग्रौर भी व्याकुल प्यास लेकर लौट ग्राता है।

—१६४२

लाल कनेर

[इस नाटक की घटना जिस नगर में घटी है उसका नाम है यक्षपुरी। यहाँ के मजदूर मिट्टी के नीचे से सोना निकालने के कार्य में नियुक्त हैं। यहाँ का राजा एक अत्यन्त जटिल जाल के आवरण के अन्तराल में रहा करता है। महल में जहाँ उस जाल का आवरण है वही स्थान इस नाटक का एकमात्र दृश्य है। उसी आवरण के बाहर की ओर सभी घटनाएँ घटती हैं।]

[नंदिनी और किशोर, खदान खोदने वाला बालक]

किशोर—नंदिनी, नंदिनी, नंदिनी !

नंदिनी—मुझे इस तरह चिल्ला-चिल्ला के क्यों पुकार रहा है किशोर, मैं क्या सुन नहीं सकती ?

किशोर—जानता हूँ, तू सुन सकती है। लेकिन मुझे पुकारना अच्छा लगता है। तुम्हें और फूल चाहिएँ ? अच्छा, तो मैं ले आऊँ।

नंदिनी—जा, जा, अभी काम पर लौट जा, देर न कर।

किशोर—सारा दिन तो सिर्फ सोने का ताल ही खोदता रहता हूँ। ज़रा-सा समय उसी में से चुराकर तेरे लिए फूल ले आने का जो मौक़ा पाता हूँ तो ऐसा लगता है मानो प्राण बच गए।

नंदिनी—अरे किशोर, वे अगर जान गए तो तुझे सज़ा देंगे।

किशोर—तुम्हींने तो कहा था कि जैसे भी हो तुम्हें लाल कनेर चाहिए ही। मुझे इसमें यही मजा आता है कि लाल कनेर यहाँ आसानी से नहीं मिलता। बहुत खोज-पूछ करने पर एक ही पेड़ पा सका हूँ, वह यहाँ के जंजाल के पीछे है।

नंदिनी—तो मुझे दिखा दे, मैं जाकर खुद फूल चुन लाऊँगी।

किशोर—ऐसी बात न बोलो नंदिनी, इतनी निठुर मत बनो। उस पेड़ को मेरी एकमात्र गोपन बात की तरह छिपा रहने दो। विशू तुम्हें गान सुनाया करता है, वह गान उसका अपना होता है। आज से मैं तुम्हें फूल दिया करूँगा, ये मेरे अपने फूल होंगे।

नंदिनी—मगर यहाँ के ये हैवान तुझे दण्ड जो देते हैं। देखकर मेरी छाती फट जाती है!

किशोर—उस दुःख से मेरे फूल और भी अधिक मेरे अपने होकर खिलते हैं; वे मेरे दुःख के धन हैं।

नंदिनी—किन्तु तुम लोगों के ये दुःख मैं कैसे सहूँगी?

किशोर—कैसा दुःख? नंदिनी, मैं एक दिन तेरे लिए प्राण दूँगा, यही बात कितनी बार मन-ही-मन सोचा करता हूँ।

नंदिनी—तुमने तो मुझे इतना दिया, पर मैं तुझे क्या दूँ, बता तो किशोर?

किशोर—तू? तू मुझे वचन दे कि मेरे ही हाथ से रोज़ सवेरे फूल लेगी।

नंदिनी—अच्छा, यही सही। लेकिन तू ज़रा सम्हलकर चल।

किशोर—ना, मैं सम्हलकर नहीं चलूँगा, नहीं चलूँगा। उनकी मार की नाक के ऊपर से तेरे लिए रोज़ फूल ले आ दूँगा!

[प्रस्थान

[अध्यापक का प्रवेश]

अध्यापक—नंदिनी, रुको, जाना नहीं!

नंदिनी—क्या है अध्यापक ?

अध्यापक—बार-बार इस तरह चकाचौंध लगाकर चली क्यों जाती हो ? जब तुमने चित्त को झकझोर दिया है तो ज़रा बोलते जाने में क्या हर्ज है ? तनिक ठहरो, दो बातें कर लूं।

नंदिनी—तुम्हें मेरी क्या ज़रूरत है ?

अध्यापक—ज़रूरत की बात तुमने एक ही कही। उधर ज़रा नज़र फिराओ। हमारे खुदाई करनेवाले मजूरों के दल पृथ्वी की छाती चीरकर ज़रूरत का बोझ सिर पर धारण किए, कीड़ों की तरह खदान से बाहर निकल रहे हैं। इस यक्षपुरी में हमारे पास जो कुछ धन है वह उसी धूल की नाड़ी का धन है—सोना ! किन्तु सुन्दरी, तुम जो सोना हो वह तो धूल का सोना नहीं है, वह तो प्रकाश का सोना है। ज़रूरत के बंधन में उसे कौन बाँध सकेगा ?

नंदिनी—बार-बार यह एक ही बात कहा करते हो। अच्छा, मुझे देखकर तुम्हें इतना अचरज क्यों है अध्यापक ?

अध्यापक—सवेरे फूल के वन में जो प्रकाश आता है उसमें अचरज की कोई बात नहीं, किन्तु पक्की दीवाल की दरार से जो प्रकाश आता है उसकी बात ही कुछ और होती है। यक्षपुरी में तुम वही अचरज-भरी रोशनी हो। अच्छा बताओ तो सही, तुम यहाँ के बारे में क्या सोचती हो ?

नंदिनी—अवाक् होकर देखती हूँ कि सारा शहर मिट्टी के नीचे सिर घुसेड़कर अँधेरे में टटोल रहा है। पाताल में खदान खोदकर तुम लोग यक्ष का धन निकाल लाते हो। परन्तु वह तो बहुत दिनों का मरा धन है, धरती ने उसे कबर दे रखी थी।

अध्यापक—हम लोग उसी मरे धन की शव-साधना करते हैं। उसके प्रेत को बस करना चाहते हैं। सोने के ताल में यदि ताल-बेताल को बाँध सकेंगे तो सारी पृथ्वी मुट्ठी में कर लेंगे।

नंदिनी—और फिर तुम लोगों ने अपने राजा को एक अद्-भुत जाल की दीवाल की ओट में बाँध रखा है; तुम्हें डर है कि कहीं यह बात खुल न जाय कि तुम्हारा राजा भी आदमी है। तुम्हारी उस खदान के अंधकार के ढक्कन को तोड़कर उसमें प्रकाश उँड़ेल देने की इच्छा होती है। उसी प्रकार जी में आता है कि इस भद्दे जाल को तोड़कर उस बेचारे मनुष्य का उद्धार करूँ।

अध्यापक—हमारे मरे धन के प्रेत की जैसी भयंकर शक्ति है, वैसा ही भयंकर प्रताप है हमारे मनुष्यता-छने राजा का भी।

नंदिनी—ये सब तुम्हारी बनाकर गढ़ी हुई बातें हैं।

अध्यापक—गढ़ी हुई तो हैं ही। नंगे आदमी का कोई परिचय नहीं है। बना-सँवारकर तैयार किए हुए कपड़ से ही कोई राज़ा है, कोई रंक है। चलो मेरे घर में। तुम्हें तत्त्व की बातें समझाने में बड़ा आनन्द आता है।

नंदिनी—तुम्हारे खुदाई के मजूर जिस प्रकार खान खोदते-खोदते मिट्टी के नीचे डूबते ही जा रहे हैं, उसी प्रकार दिन-रात तुम पोथी-पत्रे में गर्त खोदते ही जा रहे हो। मुझे ले जाकर बेकार समय क्यों नष्ट करोगे ?

अध्यापक—हम लोग ठोस अवकाश-रहित बिल के फतिंगे हैं, घने काम में डूबे हुए हैं। तुम खुले समय के आकाश की संध्या-

तारा हो, तुम्हें देखकर हमारे पंख फड़फड़ाने लगते हैं। आओ मेरे घर में, तुम्हें लेकर थोड़ा समय नष्ट करने दो मुझे।

नंदिनी—ना, ना, इस समय नहीं। मैं आई हूँ तुम्हारे राजा को उसके अपने घर में देखने।

अध्यापक—वह तो जाल की ओट में रहता है, तुम्हें घर में घुसने नहीं देगा।

नंदिनी—मैं जाल की बाधा नहीं मानती, मैं घर के भीतर घुसने आई हूँ।

अध्यापक—जानती हो नंदिनी, मैं भी एक जाल के पीछे हूँ। मुझमें भी मनुष्य का बहुत-कुछ छूट गया है, सिर्फ पंडित-भर जगा हुआ है। हमारा राजा जैसा भयंकर राजा है, मैं भी वैसा ही भयंकर पंडित हूँ।

नंदिनी—तुम मेरे साथ मज़ाक कर रहे हो। तुम तो भयंकर नहीं लगते। एक बात पूछूं, ये लोग मुझे यहाँ ले आए पर रंजन को साथ क्यों नहीं लाए भला ?

अध्यापक—सभी चीज़ों को टुकड़े-टुकड़े करके ले आना ही इनका दस्तूर है। मगर मैं पूछता हूँ कि इस जगह के मरे धन के बीच अपने प्राणों के धन को क्यों ले आना चाहती हो ?

नंदिनी—मेरे रंजन को ले आवें तो इनके मरे पंजर में प्राण नाच उठेंगे।

अध्यापक—अकेली नंदिनी को ले आकर ही यक्षपुरी के सरदार हतबुद्धि हो गए हैं, रंजन को लाने से उनका क्या होगा ?

नंदिनी—वे जानते ही नहीं कि वे कैसे विचित्र हैं ! उनके

बीच विधाता यदि एक अच्छी-सी हँसी हँस दें तो उनकी नींद टूट जा सकती है। रंजन विधाता की वही हँसी है।

अध्यापक—देवता की हँसी सूर्य का प्रकाश है, उससे बर्फ पिघलती है, किन्तु पत्थर नहीं गलता। हमारे सरदारों को गलाने के लिए ताक़त चाहिए।

नंदिनी—मेरे रंजन की ताकत तुम्हारी शंखिनी नदी के समान है। उस नदी की ही तरह वह जिस प्रकार हँस सकता है उसी प्रकार तोड़-फोड़ भी सकता है। अध्यापक, तुम्हें आज के दिन की अपनी एक गुप्त खबर दूँ। आज रंजन के साथ मेरी मुलाक़ात होगी।

अध्यापक—कैसे समझीं ?

नंदिनी—होगी, होगी, ज़रूर मुलाक़ात होगी। खबर आई है।

अध्यापक—सरदार की आँख बचाकर किस रास्ते खबर आ सकती है भला ?

नंदिनी—जिस रास्ते वसन्त के आने की खबर आती है उसी रास्ते से। उसमें लगा हुआ है आकाश का रंग और पवन की लीला !

अध्यापक—अर्थात् आकाश के रंग में, पवन की लीला में, उड़ती-उड़ती खबर आ पहुँची है।

नंदिनी—जब रंजन आएगा तो दिखा दूँगी कि उड़ती खबर किस प्रकार मिट्टी पर आ पहुँचती है।

अध्यापक—रंजन की बात चलते ही नंदिनी के मुख की बातें रुकने का नाम नहीं लेना चाहतीं। जाने भी दो, मेरे तो

वस्तुतत्त्व-विद्या है, उसीके गह्वर में घुस पड़ता हूँ। अब हिम्मत नहीं होती। [थोड़ी दूर जाकर फिर लौट आता है] नंदिनी, एक बात तुमसे पूछूँ, यक्षपुरी से तुम डरतीं नहीं?

नंदिनी—डरने की क्या बात है?

अध्यापक—ग्रहण के सूर्य से लोग डरा करते हैं, पूर्ण सूर्य से कोई नहीं डरता। यक्षपुरी ग्रहण-लगी पुरी है। सोने के खदान-रूपी राहु ने उसे निगल लिया है। वह स्वयं पूर्ण नहीं है, किसी को पूर्ण रहने भी नहीं देना चाहती। मैं तुमसे कहता हूँ, तुम यहाँ मत रहो। तुम जब चली जाओगी तो ये खदानें और भी मुँह बाकर हमारी ओर ताकती रहेंगी। फिर भी कहता हूँ, भाग जाओ! जहाँ के लोग डकैती करके माता वसुंधरा के आँचल को टुकड़े-टुकड़े करके चिथड़ नहीं देते, वहीं रंजन को लेकर सुखपूर्वक वास करो। [कुछ दूर जाकर फिर लौटता है] नंदिनी, तुम्हारे हाथ में वह जो लाल कनेर का कंगन है उसमें से एक फूल निकाल के दोगी?

नंदिनी—क्यों, तुम क्या करोगे?

अध्यापक—कितनी ही बार सोचा है कि तुम जो लाल कनेर का कंगन पहनती हो, उसका कुछ अर्थ है।

नंदिनी—मैं तो उसका अर्थ नहीं जानती।

अध्यापक—शायद तुम्हारा भाग्यपुरुष जानता है। उस लाल आभा में एक भय-सना रहस्य है, केवल माधुर्य नहीं।

नंदिनी—मुझमें भय?

अध्यापक—विधाता ने सुन्दर के हाथों रक्त की तूलिका दी है। पता नहीं इस लाल रंग से तुम कौन-सा लेखा लिखने आई

हो। मालती थी, मल्लिका थी, चमेली थी—सब छोड़कर तुमने इसी फूल को क्यों चुन लिया ? जानती हो, मनुष्य इसी प्रकार अनजान में अपना भाग्य चुन लेता है।

नंदिनी—रंजन कभी-कभी मुझे दुलराकर लाल कनेर कहा करता है, मालूम नहीं क्यों। मुझे ऐसा लगता है कि रंजन के प्रेम का रंग लाल है, मैंने उसी रंग को गले में पहना है, वक्षःस्थल पर धारण किया है, हाथ में पहन रखा है।

अध्यापक—तो मुझे उसका एक फूल दे दो, सिर्फ एक क्षण का दान ! मैं उस रंग के तत्त्व को समझने की चेष्टा करूँ।

नंदिनी—यह लो। आज रंजन की अवाई की खुशी में यह फूल मैंने तुम्हें उपहार दिया।

[**अध्यापक का प्रस्थान**

[**खदान के मजूर गोकुल का प्रवेश**]

गोकुल—एक बार मुंह फिराओ तो भला। तुम्हें समझ ही नहीं सका। कौन हो तुम ?

नंदिनी—मुझे जो कुछ देख रहे हो, उसके सिवा मैं और कुछ नहीं हूँ। समझने की तुम्हें जरूरत क्या है ?

गोकुल—समझे बिना अच्छा नहीं लगता। यहाँ राजा तुम्हें किस काम के लिए ले आए हैं ?

नंदिनी—अकाज के लिए।

गोकुल—तुम्हारे पास जैसे कोई मन्तर है ! सबको तुमने बस कर लिया है ! सत्यानाशी हो तुम ! जो लोग तुम्हारा यह सुन्दर मुख देखकर भूलेंगे, वे मरेंगे। देखूँ भला, तुम्हारी माँग में वह क्या झूल रहा है ?

नंदिनी—लाल कनेर की मंजरी।

गोकुल—उसका मतलब ?

नंदिनी—उसका कोई मतलब नहीं।

गोकुल—मैं तुम्हारा बिलकुल विश्वास नहीं करता। एक कैसा जाल तुमने फैलाया है ! दिन बीतते-न-बीतते कोई-न-कोई एक आफ़त तुम ज़रूर ले आओगी, इसी लिए इतना सिंगार किया है। भंयकरी हो तुम, भयंकरी !

नंदिनी—मैं तुम्हें इतनी भयंकर क्यों लगती हूँ ?

गोकुल—देखकर जान पड़ता है तुम लाल रोशनी की मशाल हो। जाता हूँ बेवक़ूफ़ों को समझाकर कह देने—'साव-धान, सावधान, सावधान !'

[प्रस्थान

नंदिनी—[जाल के दरवाज़े पर धक्का मारती है] सुन रहे हो ?

नेपथ्य से—सुन रहा हूँ नन्दा ! लेकिन बार-बार मत पुकारो, मुझे समय नहीं है, बिलकुल नहीं।

नंदिनी—आज मेरा मन खुशी से भरा है। उसी खुशी को लेकर तुम्हारे घर में आना चाहती हूँ।

नेपथ्य से—नहीं, घर में नहीं। जो कुछ कहना हो बाहर से ही कहो।

नंदिनी—कुन्द-फूल की माला गूँथकर लाई हूँ, पद्मपत्रों के दोने में।

नेपथ्य से—खुद पहन लो।

नंदिनी—मुझे नहीं फबती, मेरी माला लाल कनेर की है।

नेपथ्य से—मैं पर्वत की चोटी की तरह हूँ। शून्यता ही मेरी शोभा है।

नंदिनी—उस चोटी के वक्षःस्थल से भी झरना झरा करता है, तुम्हारे गले में भी हार लहराएगा। जाल खोल दो, मैं भीतर आऊँगी।

नेपथ्य से—आने नहीं दूँगा, जो कहना हो शीघ्र बोलो, समय नहीं है।

नंदिनी—दूर का वह गान सुन रहे हो ?

नेपथ्य से—कैसा गान ?

नंदिनी—पौष का गान। फ़सल पक गई है, काटनी होगी। यह उसी का गान है।

> पौष तुम्हें बुला रहा है, आ जाओ, आ जाओ ! आज उसकी डलिया पकी फ़सल से भर गई है, आहा कैसा सुन्दर है यह ![1]

देखते नहीं हो पौष की धूप पके धान की सुन्दरता को आकाश में फैलाए दे रही है।

> दिग्वधुएँ धान के खेतों में हवा के नशे से मतवाली हो उठी हैं। मिट्टी के आँचल पर धूप का सोना बिखर पड़ा है। आहा, कैसी विचित्र शोभा है ![2]

तुम भी निकल आओ राजा, तुम्हें मैं मैदान की ओर ले चलूंगी—

> मैदान की वंशीध्वनि सुन-सुनकर आकाश आनन्दित हो उठा है। कौन है जो आज घर में रहना चाहता है, द्वार खोलो, द्वार खोलो।[3]

नेपथ्य से—मैं मैदान जाऊँगा। वहाँ मैं किस काम आऊँगा?

नंदिनी—मैदान का काम तुम्हारी इस यक्षपुरी के काम से कहीं अधिक सहज है।

नेपथ्य से—सहज काम ही मेरे लिए कठिन होता है, कभी तालाब भी फेन के नूपुर पहनने वाले झरने के समान नाच सकता है? जाओ, जाओ, अब मत बोलो, समय नहीं है।

नंदिनी—अद्‌भुत है तुम्हारी शक्ति! जिस दिन तुमने मुझे अपने भाण्डार में घुसने दिया था, उस दिन तुम्हारे सोने के ताल को देखकर मुझे बिलकुल आश्चर्य नहीं हुआ था, किन्तु जिस विराट् शक्ति के बल पर अनायास ही उसे लेकर पहाड़ की चोटी की तरह सजा रहे थे, वही देखकर मैं मुग्ध हो गई थी। तो भी पूछती हूँ राजा, सोने का पिंड क्या तुम्हारे हाथों के अचरज-भरे छन्द से उसी प्रकार चंचल हो उठता है, जिस प्रकार धान का खेत हो सकता है? अच्छा राजा, बताओ तो भला, पृथ्वी का यह मरा धन दिन-रात उलटते-पुलटते रहते हो, तुम्हें डर नहीं लगता?

नेपथ्य से—क्यों, डर काहे का?

नंदिनी—पृथ्वी हमारे प्राणों की वस्तु को प्रसन्न होकर स्वयं देती है, किन्तु जब उसकी छाती चीरकर मरे हाड़ को ऐश्वर्य कहकर छीन लाते हो, तब तुम अँधेरे में से एक अंधे राक्षस का श्राप ले आते हो। देखते नहीं, यहाँ सभी कैसे-कैसे झुंझलाए हुए-से लगते हैं।

नेपथ्य से—श्राप?

नंदिनी—हाँ, खून-खच्चर, लूट-खसोट का श्राप?

नेपथ्य से—उस श्राप की बात में नहीं जानता। इतना जानता हूँ कि हम शक्ति लेकर आते हैं। मेरी शक्ति देखकर तम खुश होती हो नंदिनी ?

नंदिनी—बड़ी खुशी होती है। इसी लिए तो कहती हूँ कि उजेले में निकल आओ, धरती पर पाँव रखो, पृथ्वी भी खुश हो जाय।

धान की फुनगियों पर ओस लगने से आलोक की प्रसन्नता
जाग उठी है। आहा, पृथ्वी की खुशी आज उसके हृदय में
समा नहीं रही है, वह देखो, वह आनन्द उछल रहा है !
आहा, कैसी विचित्र शोभा है ![४]

नेपथ्य से—नंदिनी, तुम्हें क्या मालूम है कि विधाता ने रूप की माया के अन्तराल में तुम्हें अनुपम बना रखा है ? उसमें से छीनकर तुम्हें मुट्ठी में करना चाहता हूँ, पर पकड़ नहीं पाता। मैं तुम्हें उलट-पुलट कर देखना चाहता हूँ, और न देख सका तो तोड़-फोड़ देना चाहता हूँ।

नंदिनी—तुम क्या कह रहे हो ?

नेपथ्य से—तुम्हारे उस लाल कनेर की जो आभा है, महज उस आभा को निचोड़कर मैं अपनी आँखों में अंजन क्यों नहीं कर पाता ? मामूली-सी कई पँपड़ियों ने आँचल से उसे ढक रखा है। ऐसी ही बाधा तुममें भी है—कोमल है, इसी लिए कठोर है ! अच्छा नंदिनी, साफ़-साफ़ बताओ, तुम मुझे क्या समझती हो ?

नंदिनी—यह और किसी दिन बताऊँगी। आज तो तुम्हारे पास समय नहीं है, आज जाती हूँ।

नेपथ्य से—नहीं-नहीं, जाओ मत ! मुझे क्या समझती हो, बताए जाओ।

नंदिनी—कितनी ही बार तो कहा है, तुम्हें आश्चर्यमय समझती हूँ। अपने प्रकाण्ड हाथों से प्रचंड ज़ोर के साथ तुम फूलते-फूलते ऊपर उठे हो, ठीक तूफ़ान के आगे-आगे चलने वाले बादल की तरह—देखकर मेरा मन नाच उठता है।

नेपथ्य से—रंजन को देखकर भी तो तुम्हारा मन नाच उठता है, वह भी क्या…

नंदिनी—रहने दो उस बात को। तुम्हें तो समय नहीं है।

नेपथ्य से—समय है, सिर्फ वही बताए जाओ !

नंदिनी—उस नाच का ताल और तरह का है, तुम नहीं समझ सकोगे।

नेपथ्य से—समझूंगा। समझना चाहता हूँ।

नंदिनी—सारी बात खोलकर नहीं समझा सकती, मैं जाती हूँ।

नेपथ्य से—रुको ज़रा। बताओ मैं अच्छा लगता हूँ या नहीं?

नंदिनी—हाँ, खूब अच्छे लगते हो।

नेपथ्य से—रंजन की ही तरह ?

नंदिनी—घूम-फिरकर एक ही बात। ये सारी बातें तुम नहीं समझते।

नेपथ्य से—कुछ-कुछ समझता हूँ। मैं जानता हूँ रंजन के साथ मेरा अन्तर क्या है। मेरे अन्दर ज़ोर-ही-ज़ोर है, रंजन में जादू है।

नंदिनी—जादू किसे कहते हो ?

नेपथ्य से—समझाकर कहूँ ? पृथ्वी के निचले तले में पिंडीभूत पत्थर है, लोहा है, सोना है, यहाँ ज़ोर की मूर्ति रहती है। उपरले तले में ज़रा-सी कच्ची मिट्टी है, उस पर उगी है घास, खिले हैं फूल—वहीं जादू का खेल है। मैं दुर्गम के बीच से हीरा ले आता हूँ, मनि-मानिक ले आता हूँ, लेकिन सहज में बीच से प्राण के उस जादू को नहीं ला पाता।

नंदिनी—तुम्हारे पास इतना है तो भी बराबर इस प्रकार लोभी की तरह बातें क्यों किया करते हो ?

नेपथ्य से—मेरे पास जो कुछ है सब बोझ हो गया है। सोना जमाते रहने से वह पारस पत्थर थोड़े ही हो जाता है !··· शक्ति को जितना भी क्यों न बढ़ाऊँ वह यौवन तक नहीं उठ सकती। इसी लिए पहरा बैठाकर तुम्हें बाँधना चाहता हूँ, रंजन की तरह मेरे यौवन होता तो तुम्हें खुली रखकर ही बाँध सकता। इसी तरह बंधन की रस्सी में गाँठ देते-देते दिन कट गए। हाय रे हाय ! सब-कुछ बँधता है, केवल आनन्द नहीं बँधता।

नंदिनी—तुमने तो खुद को ही जाल में बाँध रखा है, तब फिर क्यों इस प्रकार छटपटा रहे हो, कुछ समझ में नहीं आता।

नेपथ्य से—तुम नहीं समझ सकोगी। मैं एक विशाल रेगिस्तान हूँ—मरुभूमि। तुम्हारे समान एक-एक छोटी-सी घास की तरफ हाथ फैलाकर चिल्ला रहा हूँ—मैं तप्त हूँ, मैं रिक्त हूँ, मैं क्लान्त हूँ ! प्यास की जलन से इस रेगिस्तान ने न जाने कितनी उपजाऊ ज़मीनों को चाट डाला है, लेकिन इससे रेगिस्तान का ही फैलाव बढ़ता गया है, एक मामूली-सी कमज़ोर घास में जो प्राण है उसे वह अपना नहीं सका है।

नंदिनी—तुम्हें देखकर तो ऐसा नहीं लगता कि तुम क्लान्त हो। मैं तो तुम्हारी ज़बरदस्त ताकत ही देख रही हूँ।

नेपथ्य से—नंदिनी एक दिन दूर देश में मेरे ही जैसा एक क्लान्त पहाड़ दिखाई पड़ा था। बाहर से मैं समझ ही नहीं सका कि उसके सभी पत्थर भीतर-ही-भीतर व्यथित हो उठे हैं। एक दिन बड़ी रात गये भयंकर आवाज़ सुनाई पड़ी, ऐसा जान पड़ा मानों किसी दैत्य का दुःस्वप्न उमड़-घुमड़कर एकाएक फट पड़ा हो। सवेरे क्या देखता हूँ कि पहाड़ भूकंप से ढह पड़ा है। शक्ति का भार अनजान में किस तरह आदमी को पीस देता है, यह बात उस पहाड़ को देखकर ही समझ सका था। और तुममें एक बात है—ठीक इससे उल्टी।

नंदिनी—मुझमें क्या देख रहे हो ?

नेपथ्य से—विश्व की वंशी में नाच का जो छंद बजा करता है, वही छन्द।

नंदिनी—कुछ समझ नहीं सकी।

नेपथ्य से—उस छन्द में वस्तु का विपुल भार हल्का हो जाता है। उस छन्द में ग्रह-नक्षत्रों के दल भिखारी नट-बालकों की भाँति आसमान के कोने-कोने में नाचते फिर रहे हैं। उसी नाच के छन्द में तुम इतनी सहज हो गई हो नंदिनी, इतनी सुन्दर ! मेरी तुलना में तुम कितनी-सी हो, फिर भी मैं तुम्हें ईर्ष्या करता हूँ।

नंदिनी—तुमने अपने को सबसे छीनकर वंचित कर रखा है, सहज होकर सबकी पकड़ के भीतर क्यों नहीं आते ?

नेपथ्य से—अपने को गुप्त रखकर विश्व के बड़े-बड़े माल-

खज़ानों की मोटी-मोटी रकमें चुराने बैठा हूँ। लेकिन जो दान विधाता के हाथ की मुट्ठी में बन्द है उस दान तक तुम्हारी चम्पे की कली-सरीखी उँगलियाँ जितना पहुँच सकती हैं, मेरे सारे शरीर की ताकत भी उसके पास तक भी नहीं पहुँच पाती। विधाता की वह बँधी मुट्ठी मुझे खोलनी ही पड़ेगी।

नंदिनी—तुम्हारी ये सब बातें मैं अच्छी तरह समझ नहीं सकती, मैं चली।

नेपथ्य से—अच्छा, जाना। लेकिन खिड़की से मैं अपना हाथ बढ़ा रहा हूँ, तुम एक बार अपना हाथ इस पर रखो तो।

नंदिनी—ना, ना, तुम्हारा सब-कुछ छोड़कर सिर्फ एक हाथ निकलने से मुझे डर लगता है।

नेपथ्य से—सिर्फ एक हाथ से पकड़ना चाहता हूँ, इसी लिए सभी मेरे पास से भाग जाते हैं। लेकिन सब-कुछ से अगर तुम्हें पकड़ना चाहूँ तो तुम धराई दोगी नंदिन?

नंदिनी—तुमने तो मुझे घर में आने ही नहीं दिया, तब वह सब क्यों कह रहे हो?

नेपथ्य से—अपनी अवकाश-हीनता की उल्टी धारा में ठेलकर मैं तुम्हें घर में नहीं ले आना चाहता। जिस दिन अनुकूल हवा पाल में लगेगी और तुम अनायास ही आ जाओगी, उसी दिन प्रवेश का शुभलग्न होगा। वह हवा अगर तूफ़ान की हवा हो, तो भी अच्छा है। अभी भी समय नहीं आया है।

नंदिनी—मैं तुमसे कहे रखती हूँ राजा, उस हवा को रंजन ले आएगा। वह जहाँ जाता है वहीं साथ में छुट्टी लिये जाता है।

नेपथ्य से—तुम्हारा रंजन जिस छुट्टी को ढोता फिरता है उसे लाल कनेर के मधु से कौन भरे रहता है, यह क्या मैं नहीं जानता ? नंदिनी, तुमने तो मुझे खाली छुट्टी की खबर दी है, उसे भरने के लिए मैं मधु कहाँ पाऊँगा ?

नंदिनी—तो फिर आज मैं जाऊँ ?

नेपथ्य से—नहीं, इस बात का जवाब दिये जाओ।

नंदिनी—रंजन को देखकर ही जान सकोगे कि छुट्टी मधु से कैसे भर उठती है। वह बहुत सुन्दर है।

नेपथ्य से—सुन्दर का जवाब सुन्दर ही पाता है। असुन्दर जब जवाब छीन लेना चाहता है तो वीणा का तार बजता नहीं, टूट जाता है। अब नहीं, जाओ, जल्दी चली जाओ—नहीं तो आफ़त आ सकती है।

नंदिनी—जाती हूँ, किन्तु कहे जाती हूँ, आज मेरा रंजन आएगा, आएगा, तुम उसे रोक नहीं सकोगे, किसी प्रकार नहीं।

[प्रस्थान

[खदान का मजूर फागूलाल और उसकी स्त्री चंद्रा का प्रवेश]

फागूलाल—मेरी शराब तुमने कहाँ छिपा रखी है, चंद्रा ? निकालो !

चंद्रा—सो क्या ? सुबह-सुबह शराब की ही बात ?

फागूलाल—आज छुट्टी का दिन है। कल उन लोगों का मारण-चंडी का व्रत था। आज ध्वजा-पूजा होगी और उसीके साथ अस्त्र-पूजा भी।

चंद्रा—क्या कह रहे हो ? वे भी देवी-देवता मानते हैं क्या ?

फागूलाल—नहीं देखा तुमने ? उनका शराब का भाण्डार, अस्त्रशाला और मन्दिर बिलकुल सटे हुए हैं।

चंद्रा—तो तुम्हें छुट्टी मिली है इसीलिए शराब चाहिए। गाँव में रहते थे तो परब की छुट्टी को तो···

फागूलाल—वन की चिड़िया छुट्टी पाती है तो उड़ती है और पिंजरे में बन्द रहती है तो छुट्टी देने पर सिर कूटकर मर जाती है। यक्षपुरी में काम-काज की अपेक्षा छुट्टी ही एक बला है।

चंद्रा—छोड़ दो न काम, चलो घर चलें।

फागूलाल—तुम्हें शायद मालूम नहीं, घर का रास्ता बन्द है।

चंद्रा—बन्द क्यों होगा ?

फागूलाल—क्योंकि हमारे घर से इन लोगों को कोई मुनाफ़ा नहीं है।

चंद्रा—हम क्या उनकी ज़रूरत से कसके चिपका दिये गए हैं ? हममें फालतू कुछ भी नहीं है ?

फागूलाल—हम लोगों का विशू पगला कहा करता है कि पूरा बनकर रहना बकरे को खुद के लिए ही ज़रूरी है; जो लोग उसे खाते हैं वे उसकी हड्डी-पसली, खुर-पूंछ अलग करके ही खाते हैं। यहाँ तक कि वह जब कसाई के खूंटे के पास 'म्यां-म्यां' करके चिल्लाता है, उसे भी वे लोग बेकार कहकर ही एतराज किया करते हैं। वह देखो विशू पगला गान गाता-गाता इधर ही आ रहा है।

चंद्रा—अचानक कुछ दिनों से उसके गले में गान खुल गया है।

फागूलाल—यही तो देख रहा हूँ।

चंद्रा—उसे नंदिनी लगी है, उसने इसके प्राण भी खींचे हैं, गान भी।

फागूलाल—इसमें अचरज क्या है ?

चंद्रा—नहीं, अचरज कुछ भी नहीं है। अजी, तुम भी सावधान रहो, किसी दिन तुम्हारे गले से भी गान निकाल लेगी—उस दिन मुहल्ले वालों की क्या दशा होगी ? मायाविनी माया जानती है। आफ़त लाएगी।

फागूलाल—विशू की आफ़त तो आज नहीं आई है। यहाँ आने के बहुत पहले से वह नंदिनी को जानता है।

चंद्रा—[विशू को पुकारकर] समधी, सुनते जाओ, सुनते जाओ ! कहाँ चले ? गान सुनने वाले यहाँ एकाध मिल सकते हैं, बिलकुल नुकसान ही नहीं होगा।

[विशू का प्रवेश और गान]

कौन थे, तुम मेरी स्वप्न-नौका के नाविक ? पाल में नशीली हवा लगी, पागल प्राण गाता हुआ चल पड़ा। मुझे भुलावा दे जाओ, अपनी नैया खेकर मुझे अपने सुदूर घाट की ओर ले चलो।[५]

चंद्रा—तब तो कोई आशा नहीं है। हम लोग तो बहुत नज़दीक हैं।

विशू—

मेरी सारी चिन्ताएँ झूठी हैं; मेरा सब-कुछ पीछे रह जाए, तुम अपना घूँघट खोल दो, अपनी आँखें उठाकर देखो, अपनी हँसी से मेरे प्राण आच्छादित कर लो।[६]

चंद्रा—तुम्हारी स्वप्न-नौका की उस लड़की को मैं जानती हूँ।

विशू—बाहर से कैसे जानोगी ? मेरी नैया के भीतर से तो तुमने देखा नहीं।

चंद्रा—कहे देती हूँ, वह एक दिन नाव डूबा देगी—वही तुम्हारे दुलार की नंदिनी !

[खदान-मजूर गोकुल का प्रवेश]

गोकुल—देखो विशू, वह तुम्हारी नंदिनी अच्छी नहीं जँचती।

विशू—क्यों, क्या किया उसने ?

गोकुल—कुछ किया नहीं, इसीलिए तो खटका लगता है। यहाँ का राजा खामखा उसे क्यों यहाँ ले आया है ? उसका रंग-ढंग कुछ समझ में नहीं आता।

चंद्रा—समधी, यह हमारे दुःख की जगह है, यहाँ आकर वह आठों पहर सुन्दरीगीरी करती फिरेगी, यह हम नहीं देख सकतीं।

गोकुल—हमारा तो सीधे-सादे मोटे-सोटे चेहरे में विश्वास है, ज़रा भारी-भरकम और वज़नदार होना चाहिए।

विशू—दिक्कत यह है कि यक्षपुरी की हवा सुन्दर के प्रति अवज्ञा सिखा देती है। सुन्दर तो नरक में भी है, पर वहाँ रहने वाले उसे समझ नहीं पाते, यही तो उनकी सबसे बड़ी सज़ा है।

चंद्रा—अच्छा, तुम्हारी ही सही। मान लिया हम लोग मूर्ख ही हैं, परन्तु जानते हो, यहाँ का सरदार भी उसे फूटी आँखों नहीं देख पाता ?

विशू—देखो चंद्रा, ऐसा न हो कि सरदार की फूटी आँखों की छूत तुम्हें भी लग जाए। यह छूत लगी तो हमें देखकर भी तुम्हारी आँखें लाल हो जाएँगी। अच्छा फागू, तेरा क्या ख़याल है ?

फागूलाल—सच कहता हूँ दादा ! नंदिनी को जब देखता हूँ तो अपनी ओर देखने पर शर्म मालूम होती है। उसके सामने मुँह से बात ही नहीं निकलती।

गोकुल—विशू भाई, उस लड़की ने तुम्हारा मन भुला लिया है, इसीलिए तुम देख नहीं सकते कि कैसी कुलच्छनी है वह। यह बात समझने में बहुत देर नहीं लगेगी, मैं कहे रखता हूँ।

फागूलाल—विशू भैया, तुम्हारी समधिन जानना चाहती है कि हम लोग शराब क्यों पीते हैं ?

विशू—स्वयं विधाता की कृपा से चारों ओर मदिरा की ही जय-जयकार है, यहाँ तक कि तुम्हारी आँखों के उस कटाक्ष में भी। हम अपनी इस भुजा से काम जुगाया करते हैं और तुम अपनी भुजलताओं के बन्धन से मदिरा जुगाया करती हो। जानती हो समधिन, जीवलोक में मजूरी करनी पड़ती है और उसे भूलना भी पड़ता है। मदिरा न हो तो उसे भुलाएगा कौन ?

चंद्रा—और नहीं तो क्या ! तुम्हारे जैसे जनम के मतवालों के ऊपर विधाता की दया का कोई आरपार नहीं है। शराब का भाण्ड एकदम उलट दिया है।

विशू—एक तरफ़ भूख और प्यास चाबुक मार रही हैं, कलेजे में आग लगाए दे रही हैं, कहती हैं, काम करो। दूसरी तरफ़ बन की हरियाली ने माया फैला दी है, धूप के सोने ने माया

बिखेर दी है, वे चित्र में मस्ती ले आ दे रहे हैं, कहते हैं—छुट्टी, छुट्टी, छुट्टी !

चंद्रा—इसीको शराब कहते हैं क्या ?

विशू—प्राणों की शराब ! नशा हलका मगर खुमारी दिन-रात लगी हुई है। सुबूत देता हूँ। इस राज में आया और पाताल में सेंध मारने के काम में लग गया। सहज शराब का नसीब होना दूभर हो गया। इसीलिए तो अन्तरात्मा बाज़ारू शराब से मत-वाला बना घूम रहा है। जब सहज ही साँस लेने में बाधा पड़ती है, तभी आदमी हाँफने लगता है।

तेरे प्राणों का रस सूख गया है, तो फिर तू मरण-रस से प्याला भर ले। चिताग्नि को पिघलाकर ढाला गया है जो समस्त ज्वालाओं की ज्वाला मिटा देता है। अपनी ठहाके की हँसी से वह समस्त शून्य को रंगीन बना देता है।[७]

चंद्रा—चलो ना समधी, भाग चलें हम।

विशू—उस नील चँदोवे के नीचे खुली शराब के अड्डे पर! राह बन्द है। इसीलिए कैदखाने की शराब पर, जो असल में चोरी का माल है, हमारा खिंचाव इतना ज्यादा है। हमारे पास न तो आकाश है, न अवकाश है, इसीलिए बारह घण्टे की सारी हँसी और गान को, सूर्य के उजाले को बड़ा करके एक घूंट तरल आग के रूप में चुआ लिया है। जैसी ही ठोस गुलामी है, वैसी ही घनी छुट्टी भी।

तेरा सूर्य गहन मेघ के नीचे था, तेरा दिन बेकाम के काम

में ही नष्ट हो गया, तो फिर लुप्तिरूपी नशे की चरम-संगिनी अंधकार-रात्रि ही क्यों न आ जाए और दिग्भ्रम के नशे से तेरी क्लान्त आँखों को ढँक दे ।[८]

चंद्रा—कुछ भी कहो समधी, यक्षपुरी में आकर तुम्हीं लोगों में मस्ती आई है । हम औरतें तो कुछ भी नहीं बदलीं ।

विशू—बदलीं नहीं तो क्या ? तुम लोगों का फूल सूख गया है, अब सोना-सोना करके प्राण हाँफ रहा है ।

चंद्रा—कभी नहीं ।

विशू—मैं कहता हूँ, हाँ । वह अभागा फागू बारह घण्टे के बाद और भी चार घण्टा सिर कूटता है; इसका कारण न फागू जानता है, न तुम जानती हो, अन्तर्यामी जानते हैं । तुम्हारे सोने के स्वप्न भीतर-ही-भीतर उसे चाबुक मारते हैं । यह चाबुक सरदार के चाबुक से भी कड़ा है ।

चंद्रा—अच्छा, बहुत अच्छा । अब चलो न, यहाँ से देस लौट जाएँ ।

फागूलाल—अच्छा भाई विशू, तुम तो एक दिन पोथी पढ़-पढ़कर आँख खराब करने बैठे थे, तुम्हें भला हमारे जैसे मूर्खों के साथ कुदाल पकड़वा दिया, सो कैसे हुआ ?

चंद्रा—इतने दिनों से हूँ, समधी से इस सवाल का जवाब नहीं वसूल किया जा सका ।

फागूलाल—और मजा यह है कि बात सभी को मालूम है ।

विशू—क्या मालूम है, सुनूँ भला ?

फागूलाल—हमारी खबर लेने के लिए उन्होंने तुम्हें चर बनाकर रखा था।

विशू—तुम सब जानते थे तो मुझे जीता क्यों छोड़ दिया ?

फागूलाल—यह भी जानते हैं कि यह काम तुमसे हुआ नहीं।

चंद्रा—क्यों समधी, ऐसे आराम के काम में भी नहीं टिक सके ?

विशू—आराम का काम कहती हो, एक जीती-जागती देह के पीछे पीठ के फोड़े की तरह लगे रहने को ? मैंने कहा, 'शरीर ख़राब लग रहा है, देस जाऊँगा।' सरदार बोले, 'आहा, इतना कमज़ोर शरीर लेकर देस जा भी कैसे सकोगे ? फिर भी कोशिश करके देखो।' कोशिश करके देख लिया। मालूम हुआ कि यक्षपुरी के कौर में घुस जाने पर उसका बाया हुआ मुँह बन्द हो जाता है, फिर तो उसके पेट में जाने के सिवा और कोई रास्ता रह ही नहीं जाता। आज मैं उसके उसी आशाहीन, आलोकहीन पेट में ग़ायब हो गया हूँ। अब तुममें-मुझमें फ़र्क इतना ही है कि सरदार तुम्हारी जितनी अवज्ञा करता है, मेरी उससे कहीं अधिक। केले के फटे पत्ते की अपेक्षा फूटी हाँडी पर आदमी की अवहेलना ज़्यादा होती है।

फागूलाल—कुछ परवा नहीं, विशू दादा, हम तो तुम्हें सिर-माथे लिये ही हैं।

विशू—बात फूटते ही मार डाला जाऊँगा। जहाँ तुम सबोंको दुलार जाता है वहीं सरदार की आँख पहुँचती है। सुनहरा मेढक जितना ही मकमकाकर काले मेढक का स्वागत करता है, उतना ही वह साँप के कानों पहुँचता है।

चंद्रा—तुम लोगों का काम कब ख़तम होगा ?

विशू—पत्रे में दिन का अन्त तो लिखा नहीं। एक दिन के बाद दो दिन, दो दिन के बाद तीन दिन खदान काटते ही जा रहे हैं—एक हाथ के बाद दो हाथ, दो हाथ के बाद तीन हाथ। ताल-का-ताल सोना काट लाते हैं—एक ताल के बाद दो ताल, दो ताल के बाद तीन ताल। यक्षपुरी में अंक-पर-अंक कतार बाँधकर चले हैं, किसी अर्थ तक वे नहीं पहुँचते। इसीलिए उनके यहाँ आदमी नहीं, संख्या है। फागू भाई, तुम क्या हो ?

फागूलाल—पीठ के कपड़े पर निशान है; मैं ४७ फ हूँ।

विशू—मैं ६९ ङ। गाँव में आदमी था, यहाँ आकर दस-पचीस का छक हो गया हूँ। छाती पर जुए का खेल चल रहा है।

चंद्रा—समधी, सोना तो उनके बहुत हो गया, अब और की क्या ज़रूरत है ?

विशू—ज़रूरत नामक वस्तु का कोई अन्त है ? खाने की ज़रूरत है, पेट भरने पर उसका अन्त मिल जाता है; नशे की ज़रूरत नहीं है, इस कारण उसका अन्त भी नहीं है। वे सोने के ताल भी तो शराब हैं, हमारे यक्षराज्य की ठोस शराब ! नहीं समझीं ?

चंद्रा—ना !

विशू—शराब का प्याला लेकर हम भूल जाते हैं कि हम भाग्य की सीमा में बँधे हैं। समझते हैं, हमारी छुट्टी अबाध है ! यहाँ के मालिकों के मन में भी सोने का ताल हाथ में आते ही ऐसा ही मोह लगता है। वह सोचता है कि सर्वसाधारण की

मिट्टी का खिंचाव उस तक नहीं पहुँचता, और फिर वे असाधारण के आसमान में भी उड़ते हैं।

चंद्रा—नवान्न का समय आया ही समझो। गाँव-गाँव में उसकी तैयारी हो रही है। पैरों पड़ती हूँ, चलो, घर चलें। एक बार हम सब लोग अगर सरदार से···

विशू—स्त्री-बुद्धि से तुमने शायद अभी भी सरदार को नहीं पहचाना ?

चंद्रा—क्यों उसे देखने से तो मुझे अच्छा ही···

विशू—हाँ-हाँ, बहुत अच्छा, 'जगर मगर तन जोति !' घड़ियाल के दाँत हैं, बड़े क़ायदे से प्रत्येक खाँज पर गड़ जाते हैं। मकरराज स्वयं चाहें तो भी नहीं निकाल सकते।

चंद्रा—वह देखो सरदार आ रहे हैं।

विशू—हो चुका ! उसने हमारी बात ज़रूर सुनी है।

चंद्रा—क्यों हमने ऐसा तो कुछ नहीं कहा जिससे···

विशू—नहीं जानतीं समधिन, बात हम करते हैं, मानी वे लगाते हैं। इसीलिए किस बात की टीका किस छप्पर में आग लगा देगी, कोई नहीं जानता।

[सरदार का प्रवेश]

चंद्रा—सरदार दादा !

सरदार—क्या, नातिन, समाचार तो अच्छे हैं न ?

चंद्रा—एक बार घर जाने की छुट्टी दो।

सरदार—क्यों ? रहने की जो कोठरियाँ दी हैं वे तो बहुत अच्छी हैं, घर से कहीं अधिक अच्छी। सरकारी खर्च से चौकीदार तक का इन्तज़ाम कर रखा है। क्यों जी, ६९ ङ ! तुम्हें इनके

बीच देखने से ऐसा लगता है, जैसे सारस बगलों के दल को नाच सिखाने आए हैं।

विशू—सरदारजी तुम्हारे मज़ाक से तबीअत खिलती नहीं। पाँवों में नचाने की ताक़त होती तो यहाँ से उन्हें समेटकर दौड़ लगाता। तुम्हारे इलाके में नचाने का रोज़गार कितना खतरनाक है, इस बात के मोटे-मोटे दृष्टान्त मैंने देखे हैं। अब तो ऐसा हुआ है कि सीधी चाल चलते भी पैर काँपने लगते हैं।

सरदार—नातिन, एक अच्छी खबर है। इन लोगों को अच्छी बातें सुनाने के लिए कीनाराम गोसाईं को बुलवाया है। इन लोगों से प्रणामी वसूल होने पर खरचा निकल आएगा। गोसाईंजी से ये लोग रोज़ साँझ को···

फागूलाल—ना, ना, सरदार, यह नहीं होने का। आजकल साँझ को शराब पीकर हम बुद्द बने रहते हैं, कोई उपदेश सुनाने आया तो खून-खराबी हो जाएगी।

विशू—चुप, चुप, फागूलाल !

[**गोसाईं का प्रवेश**]

सरदार—यह लो, नाम लेते ही गोसाईंजी आ पहुँचे। प्रणाम करता हूँ महाराज ! हमारे इन कारीगर बेचारों का दिल कमज़ोर है, बीच-बीच में चंचल हो उठता है। इनके कान में ज़रा शान्ति-मन्त्र फूंक दें, बड़ी ज़रूरत है !

गोसाईं—इनकी बात कह रहे हो ? आहा, ये तो साक्षात् कच्छप-अवतार हैं ! इन्होंने अपने-आपको बोझ के नीचे दबा रखा है, तभी तो संसार टिका हुआ है। सोचने से रोमांच होता है ! हाँ बाबा ४७ फ, एक बार विचार देखो तो, हम जिस मुख

से नाम-कीर्तन करते हैं उस मुख के लिए अन्न कौन जुगाता है ? तुम्हीं लोग न ? जिस राम-नाम से मेरा शरीर पवित्र हो रहा है, उसे तुमने ही तो एड़ी-चोटी का पसीना एक करके बनाया है। यह कोई मामूली बात है ! आशीर्वाद करता हूँ—तुम लोग सदा अचल रहो, तभी भगवान् की दया भी तुम्हारे ऊपर अचल होकर विराजेगी। हाँ बाबा, एक बार दिल खोलकर बोलो तो—हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ! भगवान् तुम्हारा सब बोझ हलका कर दें ! हरिनाम ही 'आदावन्ते च मध्ये च !'

चंद्रा—आहा कितना मीठा लग रहा है बाबा! बहुत दिनों से ऐसी बात नहीं सुनी। ज़रा चरनों की धूल तो दो महाराज !

फागूलाल—अब तक चुप्पी साधे था, पर अब नहीं रह सकता। सरदार, इतनी बड़ी फिजूलखर्ची काहे के लिए भला ? प्रणामी वसूल करना चाहते हो तो कर लो, मगर पाखण्ड नहीं सहा जाएगा।

विशू—अरे फागूलाल, पगलाया तो खैर नहीं, चुप-चुप !

चंद्रा—तुम नरलोक-परलोक दोनों खोने बैठे हो ? तुम्हारी क्या गति होगी ? ऐसी कुबुद्धि तो पहले तुममें नहीं थी। मैं ठीक देख रही हूँ, तुम लोगों को उस नंदिनी की हवा लगी है।

गोसाईं—जो कहो, सरदार, ऐसी सरलता हमने नहीं देखी ! पेट और मुँह बिलकुल एक ! इन्हें हम क्या सिखाएँगे, इन्हींसे तो बहुत-कुछ सीखना है। समझे ?

सरदार—ज़रूर समझा। यह भी समझ रहा हूँ कि उत्पात कहाँ से शुरू हुआ है। इनका भार मुझे ही लेना पड़ेगा। महाराज,

बल्कि उस मुहल्ले में हरिनाम सुना आवें। वहाँ करातियों ने कुछ गोलमाल शुरू किया है।

गोसाईं—किस मुहल्ले की ओर कहा, सरदार !

सरदार—वो उस ट-ठ-महाल में। वहाँ का मुखिया है ७१ ट। ६५ ण जहाँ रहता है न, उसकी बाईं ओर वह महाल खतम हो जाता है।

गोसाईं—हाँ बाबा, न-महाल अब भी नटखटपन में मशगूल है, लेकिन ण-महाल वाले मधुर रस में बहुत-कुछ डूब चले हैं। उनके कान प्रायः मंत्र लेने लायक हालत में आ गए हैं। तो भी और कई महीने उस मुहल्ले में पल्टन रखने की ज़रूरत पड़ेगी, क्योंकि लिखा ही है, 'नाहंकारात् परो रिपुः'। पल्टन वालों के दबाव से अहंकार का दमन होता है, फिर हम लोगों की पारी आती है। अच्छा, तो फिर चलता हूँ।

चंद्रा—प्रभु, आशीर्वाद करो कि इन्हें सुबुद्धि हो, इन ग़लतियों का बुरा न मानना।

गोसाईं—कोई डर नहीं है, लच्छिमी माँ, ये सब ठंडे हो जाएंगे।

[प्रस्थान

सरदार—क्यों जी, ६९ ङ, तुम्हारे उस मुहल्ले वालों का मिज़ाज कुछ कैसा-कैसा देख रहा हूँ ?

विशू—हो सकता है। गोसाईंजी ने इन्हें कच्छप-अवतार कहा है, किन्तु शास्त्र के मत से अवतार बदलते भी हैं। कच्छप अचानक वराह हो जाते हैं और हड्डी की मोटी खोल की जगह दाँत निकल आते हैं, धैर्य की जगह गुर्राहट पैदा दो जाती है।

चंद्रा—विशू समधी, ज़रा रुको। सरदारदादा, मेरी अरदास न भूलना।

सरदार—बिलकुल नहीं, सुन लिया है, याद रखूँगा।

[प्रस्थान

चंद्रा—देखा ? सरदार कैसा भला आदमी है ! सबके साथ हँसकर ही बोलता है।

विशू—घड़ियाल के दाँत में शुरू में हँसी होती है, बाद में काट।

चंद्रा—काटने की कौन-सी बात है इसमें भला ?

विशू—तुम नहीं जानतीं, इन्होंने ठीक किया है कि अब से कारीगरों के साथ उनकी स्त्रियाँ नहीं आ सकेंगी।

चंद्रा—क्यों ?

विशू—उनके हिसाब से हम संख्यारूप में ही खाते में जगह पाते हैं। लेकिन संख्या के अंक के साथ नारी के अंक का योग गणितशास्त्र में नहीं मिलता।

चंद्रा—कहते क्या हो ! उनके स्त्रियाँ नहीं हैं ? वे क्या कहती हैं ?

विशू—वे भी सोने-के ताल की शराब से बेहोश हैं। नशे में वे अपने पतियों को बहुत पीछे छोड़ गई हैं। हम लोग उनकी नज़रों पड़ते ही नहीं।

चंद्रा—अच्छा समधी, तुम्हारे घर तो स्त्री थी, उसका क्या हुआ ? बहुत दिनों से उसकी कोई ख़बर नहीं मिली।

विशू—जब तक गुप्तचर के ऊँचे ओहदे पर बहाल रहा उतने दिन उसे सरदारनियों के दुतल्ले पर ताला खेलने का न्योता मिलता

रहा। परन्तु जब फागूलाल के दल में आ भिड़ा तो उधर का न्योता बन्द हो गया। उसी गुस्से से मुझे छोड़कर वह चली गई है।

चंद्रा—छी-छी ! ऐसा भी पाप करना था !

विशू—इस पाप का फल भोगने के लिए वह अगले जनम में सरदारनी होकर जनम लेगी।

चंद्रा—विशू समधी, वह देखो, कौन हैं, धूमधाम से चली हैं ? क़तार-की-क़तार मोरपंखियाँ हैं, हाथियों के हौदों की झालर देख रहे हो ? कैसा जगर-मगर हो रहा है ! उनके साथ-साथ कैसे-कैसे घुड़सवार हैं ! भालों की फलक पर मानो एक-एक टुकड़ा सूर्य की रोशनी गोले लिये जा रहे हैं।

विशू—वही तो सरदारनियाँ ध्वजा-पूजा के भोज में चली हैं।

चंद्रा—आहा क्या धूमधाम का जुलूस है ! औरकैसे सुन्दर चेहरे हैं ! अच्छा समधी, अगर तुमने काम न छोड़ दिया होता, तो तुम भी उनके दल में इसी धूमधाम के साथ निकलते और तुम्हारी वह स्त्री···

विशू—हाँ, हम दोनों की भी यही दशा होती।

चंद्रा—अब क्या लौटने का रास्ता नहीं है ? एकदम बन्द हो चुका है ?

विशू—ना, है—पनारे के भीतर से।

नेपथ्य से—पागल भाई !

विशू—क्या है पगली !

फागूलाल—लो तुम्हारी नंदिनी की पुकार आई। आज अब विशू दादा को नहीं पाया जा सकता।

चंद्रा—तुम लोग अब विशू दादा की आशा मत रखो।

अच्छा समधी, किस आशा पर उसने तुम्हें भुला रखा है ?

विशू—दुःख से भुलाया है।

चंद्रा—समधी तुम बात उलट के क्यों बोला करते हो ?

विशू—तुम सब नहीं समझ सकोगी। वह ऐसा दुःख है, जिसे भूलने के समान दुःख दुनिया में नहीं है।

फागूलाल—विशू दादा, साफ बात किया करो, नहीं तो गुस्सा आता है।

विशू—अच्छा कहता हूँ, सुन। नज़दीक की चीज़ को हथियाने के लिए जो वासनाजनित दुःख होता है वह पशु का दुःख है, और दूर की चीज़ को पाने के लिए आकांक्षाजनित जो दुःख होता है, वह मनुष्य का होता है। मेरे उस चिरन्तन दुःख के पूर का प्रकाश नंदिनी में प्रकट हुआ है।

चंद्रा—ये सब बातें मैं नहीं समझती, समधी, एक बात समझती हूँ कि जिस स्त्री को तुम लोग जितना ही कम समझते हो, वह तुम्हें उतना ही अधिक खींचती है। हम लोग सीधी-सादी हैं, हमारा मोल कम्म है, तो भी, और चाहे जो हो, हम तुम्हें सीधे रास्ते लिये चलती हैं। लेकिन आज कहे देती हूँ, यह छोकरी तुम्हें अपनी लाल कनेर की माला में फाँसकर सत्यानाश के रास्ते खींच ले जाएगी।

[चंद्रा और फागूलाल का प्रस्थान

[नंदिनी का प्रवेश]

नंदिनी—पागल भाई, आज सवेरे दूर के रास्ते से वे पौष का गान गाते हुए मैदान की ओर जा रहे थे, सुना था तुमने ?

विशू—मेरा सवेरा क्या तेरे सवेरे जैसा है जो गान सुन सकूँगा ? वह तो थकी रात का झाड़ फेंका हुआ जूठन है !

नंदिनी—आज मौज में आकर सोचा कि यहाँ के परकोटे पर चढ़कर उनके गान में मैं भी जुट जाऊँगी। पर कहीं रास्ता न पा सकी, इसीलिए तुम्हारे पास आई हूँ।

विशू—मैं तो परकोटा नहीं हूँ।

नंदिनी—हो, तुम्हीं मेरे परकोटा हो। तुम्हारे पास आती हूँ, तो ऊँचे उठकर बाहर को देखती हूँ।

विशू—तुम्हारे मुँह से यह बात सुनकर आश्चर्य होता है।

नंदिनी—क्यों ?

विशू—जब से यक्षपुरी में घुसा तब से अब तक यही मालूम होता था कि मैंने अपना आकाश ही खो दिया है, अब वह नहीं मिलने का। ऐसा जान पड़ता था कि यहाँ के टुकड़े मनुष्यों के साथ मुझे एक ही ढेंकी में कूटकर ये लोग एक पिंड के रूप में तैयार कर चुके हैं; इसमें कहीं भी दरार नहीं है, पोलापन नहीं है। ऐसे ही समय तुमने आकर मेरी ओर इस प्रकार ताका कि मुझे लगा, मानो मुझमें अब भी प्रकाश दिखाई देता है।

नंदिनी—पागल भाई, इस चारों ओर से बन्द गढ़ में सिर्फ तुममें और मुझमें एक आकाश बचा हुआ है। बाकी और सबमें बन्द हो गया है।

विशू—वह आकाश बचा हुआ है, इसीलिए तुम्हें गान सुना सकता हूँ।

तुम्हें गान सुनाऊँगा, इसीलिए तो तुम जगा रखती हो, ओ नींद तोड़नेवाली ! हृदय को चौंकाकर इसीलिए तो पुकारती हो, ओ दुःख जगानेवाली ! अँधेरा घिर आया, पक्षी घोंसलों में आ गए, नैया किनारे लगी ; सिर्फ मेरा हृदय विराम नहीं पा रहा है, ओ (मेरी) दुःख जगाने वाली !

नंदिनी—विशू पागल, तुम मुझे 'दुःख जगाने वाली' कहते हो ?

विशू—तुम मेरे समुद्र के अगम पार की दूती हो। जिस दिन आईं उसी दिन मेरे हृदय के खारे जल को हवा में धक्का मार दिया।

मेरे काम-काज के बीच में रुलाई के झूले को तुमने तो रुकने ही नहीं दिया ! मुझे छूकर, मेरे प्राणों को अमृतरस से भरकर, तुम हट जाया करती हो ! जान पड़ता है तुम मेरी व्यथा की ओट में खड़ी रहती हो, ओ दुःख जगानेवाली ![१०]

नंदिनी—तुम्हें एक बात बताऊँ पगले ! जिस दुःख का गान तुम गाते हो, मैं उसकी बात पहले नहीं जानती थी।

विशू—क्यों, रंजन के पास से ?

नंदिनी—नहीं। दोनों हाथों से दो डाँड़ पकड़कर वह मुझे तूफान की नदी पार करा देता है ; जंगली घोड़े का अयाल पकड़कर जंगल के भीतर से दौड़ा ले जाता है ; उछलते हुए बाघ की भौंहों के बीच तीर मारकर मेरा डर दूर करके वह हँसा करता है। हमारी नगाई नदी के स्रोत में कूदकर वह जिस प्रकार प्रवाह में उथल-पुथल मचा देता है, उसी तरह मुझे भी लेकर उथल-

पुथल मचाता रहता है । प्राणों की बाज़ी लगाकर, सर्वस्व को दाँव पर रखकर वह हार-जीत का खेल खेलता है । उस खेल में उसने मुझे जीत लिया है । एक दिन तुम भी तो उसी में थे, किन्तु न-जाने क्या सोचकर उस बाज़ी के खेल की भीड़ में से तुम अकेले निकल पड़े । जाते समय जाने किस तरह मेरी ओर तुमने ताका था, मैं ठीक समझ नहीं सकी ।···इसके बाद बहुत दिनों तक कोई खबर नहीं मिली । अच्छा तुम कहाँ चले गए थे, बताओ तो ?

विशू—

ओ चाँद, दुःख के सागर में आँखों के पानी का ज्वार उमड़ आया । इस पार और उस पार के किनारों में आपस में कानाफूसी होने लगी । मेरी नैया पहचाने घाट पर बँधी थी, उसका बन्धन खुल गया । उसे हवा में उड़ाता हुआ न जाने किस अन-पहचाने घाट को ले चला है ![११]

नंदिनी—उस अनचीन्हे के किनारे से इस यक्षपुरी की खुदाई के काम में तुम्हें कौन घसीट लाया ?

विशू—एक स्त्री । अचानक तीर की चोट खाकर उड़ती चिड़िया जिस प्रकार मिट्टी में गिर जाती है, उसी प्रकार उसने मुझे धूल में गिरा दिया है; मैं अपने को भूल गया था ।

नंदिनी—वह तुम्हें कैसे छू सकी ?

विशू—जब प्यासे को पानी मिलने की आशा नहीं रह जाती, तो मरीचिका उसे सहज ही भुला देती है । इसके बाद आदमी दिङ्मूढ़ हो जाता है, अपने-आपको खोज नहीं पाता । एक दिन मैं पश्चिम ओर की खिड़की से मेघों की स्वर्णपुरी देख रहा था,

वह देख रही थी सरदार के महल की सोने की चोटी। मुझसे कटाक्ष करके बोली, 'वहाँ मुझे ले चलो, देखूँ तुम्हारी ताकत कितनी है।' मैंने दर्प के साथ कहा, 'ले जाऊँगा।' उसे सोने की चोटी के नीचे ले आया। तब मेरा नशा टूटा !

नंदिनी—अब मैं आ गई हूँ, तुम्हें यहाँ से निकालकर ले जाऊँगी। सोने की बेड़ी तोड़ दूँगी।

विशू—तुमने जब यहाँ के राजा तक को हिला दिया है, तब तुम्हें कौन रोक सकता है ? अच्छा तुम उससे डरतीं नहीं ?

नंदिनी—इस जाल के बाहर से डर लगता है, लेकिन मैंने तो भीतर जाकर देखा है।

विशू—कैसे देखा तुमने ?

नंदिनी—देखा है मनुष्य ही, लेकिन प्रकाण्ड। माथा सत-तल्ले महल के सिंहद्वार की तरह है। दोनों भुजाएँ किसी दुर्गम दुर्ग के लोहे के अर्गल की भाँति हैं। ऐसा जान पड़ा जैसे रामायण-महाभारत में से उतर पड़ा हो कोई।

विशू—घर के भीतर जाकर क्या देखा ?

नंदिनी—उसके बायें हाथ पर बाज़ बैठा हुआ था, उसे दाँड़ पर बैठाकर वह मेरे मुँह की ओर ताकता रहा। फिर जिस तरह बाज़ के पंखों को उँगली से सहला रहा था, उसी प्रकार मेरा हाथ लेकर धीरे-धीरे सहलाता रहा। ज़रा देर बाद अचानक पूछ बैठा, 'तुम मुझसे डरती नहीं ?' मैंने कहा, 'बिलकुल नहीं !' फिर मेरे खुले केशों में उसने दोनों हाथ उलझा दिए और फिर कुछ देर तक आँखें मूँदे बैठा रहा।

विशू—तुम्हें कैसा लगा ?

नंदिनी—अच्छा लगा—कैसा बताऊँ ? वह जैसे हज़ार बरसों का पुराना बरगद का पेड़ हो और मैं मानो नन्हीं-सी चिड़िया हूँ। उसकी डालकी किसी टहनी पर ज़रा झूल लूँ, तो निश्चय ही उसकी मज्जा में आनन्द लगेगा। उस अकेले प्राण को इतनी-सी खुशी देने की इच्छा होती है।

विशू—फिर उसने क्या कहा ?

नंदिनी—एक बार झमककर उठ पड़ा और अपनी भाले की फलक जैसी आँखें मेरे मुँह पर रखकर बोल उठा, 'मैं तुम्हें जानना चाहता हूँ।' मुझे कैसा-कैसा लगा, सारा शरीर सिहर उठा। बोली, 'जानने को क्या है ? मैं क्या तुम्हारी पोथी हूँ ?' उसने कहा, 'पोथी में जो है सब जानता हूँ, तुम्हें नहीं जानता।' इसके बाद जाने कैसा हो उठा। बोला, 'रंजन की बात मुझे बताओ। उसे किस प्रकार प्यार करती हो ?' मैंने जवाब दिया, 'पानी के भीतर की पतवार जिस प्रकार ऊपर के आसमान के पाल को प्यार करती है—पाल में हवा का गान लगा करता है और पतवार में तरंगों का नाच।' किसी बड़े चटोर लड़के की तरह एकटक देखता हुआ वह चुपचाप सुनता रहा। अचानक चौंककर बोल उठा, 'उसके लिये प्राण दे सकती हो ?' मैं बोली—'अभी ही।' वह गरजकर मानों गुस्से में भरा हुआ चिल्ला उठा, 'कभी नहीं !' मैंने कहा, 'हाँ, प्राण दे सकती हूँ।' 'उसमें तुम्हारा क्या फ़ायदा है ?' मैं बोली—'नहीं जानती।' तब वह छटपटाकर बोल उठा, 'जाओ, मेरे घर से चली जाओ ! जाओ, काम का हर्ज मत करो।' मैं ठीक मतलब नहीं समझ सकी।

विशू—वह सभी बातों का साफ़ अर्थ जानना चाहता है। जो बात उसकी समझ में नहीं आती वह उसे व्याकुल कर देती है, इसीसे वह गुस्सा कर जाता है।

नंदिनी—पागल भाई, उसके ऊपर तुम्हें दया नहीं आती ?

विशू—जिस दिन उसपर विधाता की दया होगी उसी दिन वह मरेगा।

नंदिनी—नहीं, नहीं, तुम्हें मालूम नहीं कि जीते रहने के लिए वह किस प्रकार प्राण देने को उतारू है।

विशू—उसके जीवित रहने का क्या अर्थ है यह बात तुम आज ही देख सकोगी।

नंदिनी—वह देखो पागल भाई, वह छाया ! निश्चय ही सरदार ने छिपकर हमारी बातें सुनी हैं।

विशू—यहाँ तो चारों ओर सरदार की ही छाया दीखती रहती है। बचकर चलने का उपाय क्या है ? सरदार तुम्हें कैसा लगता है ?

नंदिनी—उसके समान मरी चीज़ मैंने देखी ही नहीं। ऐसा जान पड़ता है कि बेंत के जंगल से काटकर लाया हुआ बेंत है। पत्ता नहीं, जड़ नहीं, मज्जा में रस नहीं, सूखकर लचलचा रहा है।

विशू—अभागे ने औरों के प्राणों को सज़ा देने के लिए ही प्राण दिया है !

नंदिनी—चुप रहो, सुन लेगा।

विशू—चुप रहने को भी तो वह सुन सकता है, इससे आफ़त और बढ़ जाती है। जब मैं खुदाई करने वालों के साथ रहता हूँ,

तब बातचीत में सरदार से बचकर चला करता हूँ। इसीलिए उन्होंने मुझे बिना प्रयोजन का जीव समझकर ही अब तक बचा रहने दिया है। अपने डण्डे से भी मुझे नहीं छूते। किंतु पगली, तेरे सामने मेरा मन बढ़-बढ़कर बातें करने लगता है, सावधान रहने से घृणा होती है।

नंदिनी—नहीं नहीं, तुम विपत्ति को बुलाकर मत ले आओ।

[सरदार का प्रवेश]

सरदार—क्यों जी ६९ङ सबके साथ तुम्हारी प्रणयलीला चलती रहती है, चुनाव-विचार एकदम नहीं है ?

विशू—यहाँ तक कि तुम्हारे साथ भी शुरू हो चली थी, चुनाव-विचार के कारण ही रुक गई।

सरदार—आख़िर बातचीत का विषय क्या है ?

विशू—किस प्रकार तुम्हारे इस क़िले से निकल भागा जाए, इसी बात पर विचार कर रहे हैं।

सरदार—क्या कह रहे हो, हिम्मत इतनी बढ़ गई है? क़बूल करते भी डर नहीं लगा।

विशू—सरदार, तुम मन-ही-मन तो सब-कुछ जानते ही हो। पिंजड़े के पक्षी सींकचों को जो ठुकराया करते हैं, सो तो दुलार के कारण नहीं करते। यह बात क़बूल ही की तो क्या, न की तो क्या !

सरदार—दुलार नहीं करते यह तो जानी हुई बात है, लेकिन क़बूल करते डरते नहीं यह बात हाल ही में कई दिनों से जनाई देने लगी है।

नंदिनी—सरदारजी, तुमने कहा था कि आज रंजन को ले आ दोगे। कहाँ—तुमने बात तो नहीं रखी ?

सरदार—आज उसे देख सकोगी।

नंदिनी—यह मुझे मालूम था। तो भी तुमने आशा दी है, जय हो तुम्हारी ! यह लो कुन्द पुष्प की माला।

विशू—छी-छी, माला को तुमने नष्ट कर दिया। रंजन के लिए क्यों नहीं रखा उसे ?

नंदिनी—उसके लिए माला है।

सरदार—ज़रूर है, वह गले में झूल रही है, वही न ? जयमाला कुन्द के फूलों की है, क्योंकि वह हाथ का दान है और वरणमाला लाल कनेर की है, वह हृदय का दान है। ठीक है, ठीक है, हाथों का दान हाथों-हाथ चुका दो, नहीं तो सूख जाएगा; हृदय का दान जितनी ही इन्तज़ारी करेगा, उतना ही उसका दाम बढ़ेगा।

[**प्रस्थान**

नंदिनी—[खिड़की के पास] सुन रहे हो ?

नेपथ्य से—क्या कहना चाहती हो, बोलो।

नंदिनी—एक बार खिड़की के पास आकर खड़े हो जाओ।

नेपथ्य से—यह खड़ा हुआ।

नंदिनी—घर में आने दो, बहुत सी बातें करनी हैं।

नेपथ्य से—बार-बार क्यों झूठमूठ का अनुरोध करती हो। अभी समय नहीं हुआ। तुम्हारे साथ वह कौन है ? रंजन का जोड़ीदार है क्या ?

विशू—ना राजा, मैं रंजन की वह उलटी पीठ हूँ, जिधर रोशनी नहीं पड़ती। मैं अमावस हूँ।

नेपथ्य से—नंदिनी से तुम्हारा क्या काम है ? नंदिनी यह आदमी तुम्हारा कौन होता है ?

नंदिनी—यह मेरा साथी है, मुझे गान सिखाता है। इसीने तो वह 'भालोबासि' गान सिखाया है।

नेपथ्य से—यही तुम्हारा साथी है ? यदि अभी इसका और तुम्हारा साथ छुड़ा दूँ तो क्या होगा ?

नंदिनी—यह क्या ! तुम्हारे गले की आवाज़ कैसी हो गई ? ज़रा रुको। तुम्हारा क्या कोई साथी नहीं है ?

नेपथ्य से—मेरा साथी ? दुपहरी के सूरज का कोई साथी होता है ?

नंदिनी—अच्छा, रहने दो यह बात। मैया रे, तुम्हारे हाथ में वह क्या है ?

नेपथ्य से—एक मरा मेढक।

नंदिनी—उसे लेकर क्या करोगे ?

नेपथ्य से—यह मेढक एक दिन एक पत्थर के कोटर में घुसा था। तीन हज़ार साल तक उसी की ओट में टिका रहा। मैं इस मेढक से यही रहस्य सीख रहा था कि इसी प्रकार कैसे टिके रहा जा सकता है। कैसे जीवित रहा जा सकता है, यह बात उसे नहीं मालूम। आज ऐसा लगा कि ज्यादा दिनों तक यों सीखते रहना ठीक नहीं है, इसीलिए मैंने पत्थर का पर्दा तोड़ दिया, हमेशा टिके रहने से इसे मुक्ति दे दी। तुम्हें क्या यह खबर अच्छी नहीं मालूम होती ?

नंदिनी—मेरे चारों ओर से भी आज तुम्हारा यह पत्थर

का क़िला खुल जाएगा। मैं जानती हूँ, आज रंजन के साथ मेरी मुलाकात होगी।

नेपथ्य से—तब मैं तुम दोनों को एक साथ देखना चाहता हूँ।

नंदिनी—जाल की ओट से, अपने चश्मे से होकर, तुम नहीं देख सकोगे।

नेपथ्य से—घर में बैठाकर देखूँगा।

नंदिनी—इससे क्या होगा ?

नेपथ्य से—मैं जानना चाहता हूँ।

नंदिनी—तुम जब जानने की बात कहते हो, तो कैसा डर-सा लगता है।

नेपथ्य से—क्यों ?

नंदिनी—जान पड़ता है जिस चीज़ को मन से नहीं जाना जाता, प्राणों से समझा जाता है, उसपर तुम्हें दरद नहीं है।

नेपथ्य से—ऐसी चीज़ का विश्वास करने की हिम्मत नहीं होती, खटका लगा रहता है कि कहीं ठगा न जाऊँ। अच्छा तुम जाओ, समय बरबाद मत करो।—नहीं, नहीं, ज़रा रुको। तुम्हारे केशों से लाल कनेर का वह गुच्छा गालों पर लटक आया है। मुझे दे दो।

नंदिनी—इससे क्या होगा ?

नेपथ्य से—उस फूल के गुच्छे को देखता हूँ और ऐसा लगता है, जैसे मेरे ही रक्त-प्रकाश का शनिग्रह फूल का रूप धारण करके आया है। कभी-कभी जी में आता है, तुम्हारे पास से छीन-कर टुकड़े-टुकड़े कर दूँ। फिर सोचता हूँ, नंदिनी यदि किसी दिन अपने हाथों वह माला मेरे सिर पर पहना दे तो…

नंदिनी—तो क्या होगा ?

नेपथ्य से—तो फिर शायद मैं सहज ही मर सकूंगा ।

नंदिनी—कोई एक मनुष्य लाल कनेर को बहुत चाहता है; मैंने उसीको याद करके इन फूलों को कान का झुमका बनाया है ।

नेपथ्य से—तो फिर कहे देता हूँ, ये फूल मेरे ही शनिग्रह हैं और उसके भी शनिग्रह हैं ।

नंदिनी—छी-छी, ऐसी बात क्या कह रहे हो ! मैं जाऊँ ।

नेपथ्य से—कहाँ जाओगी ?

नंदिनी—तुम्हारे क़िले के दरवाज़े के पास बैठी रहूँगी ।

नेपथ्य से—क्यों ?

नंदिनी—रंजन जब उस रास्ते आएगा, तो देखेगा कि मैं उसीका इन्तज़ार कर रही हूँ ।

नेपथ्य से—रंजन को यदि पीसकर धूल में मिला दूँ और उसे ज़रा भी पहचाना न जा सके !

नंदिनी—आज तुम्हें क्या हो गया है ? मुझे झूठमूठ डर क्यों दिखा रहे हो ?

नेपथ्य से—झूठमूठ डर ? तुम नहीं जानतीं—मैं भयंकर हूँ ।

नंदिनी—अचानक यह तुम्हारा कैसा भाव बदल गया ? सब तुमसे डरते हैं—क्या यही देखने में तुम्हें मज़ा आता है ? हमारे गाँव का श्रीकण्ठ रामलीला में राक्षस बनता है; जब उसका संवाद होता है, तो बच्चे डर से आतंकित हो उठते हैं। इसपर वह बहुत खुश होता है । तुम्हारी भी यही हालत है । मेरे मन में कैसा लगता है, सच बताऊँ ? गुस्सा तो नहीं करोगे ?

नेपथ्य से—कैसा लगता है, बताओ भला !

नंदिनी—यहाँ के आदमियों का व्यवसाय ही डर दिखाना है। इसीलिए तुम्हें जाल से घेर कर अद्‌भुत बना रखा है उन्होंने। इस हौवा की तस्वीर बनने में तुम्हें लाज नहीं लगती ?

नेपथ्य से—क्या कहती हो नंदिनी ?

नंदिनी—इतने दिनों तक जिन्हें तुम डराते आ रहे हो, वे एक दिन डरने से शरमाएँगे। मेरा रंजन यदि यहाँ होता, तो तुम्हारी नाक के सामने चुटकी बजाके मर जाता, पर डरता नहीं।

नेपथ्य से—हिमाक़त तो कम नहीं है तुम्हारी ? इतने दिनों तक तोड़-मरोड़कर जो कुछ मैंने तहस-नहस किया है, उसी पूँजी-भूत पहाड़ की चोटी पर तुम्हें खड़ी करके दिखाने की इच्छा हो रही है। फिर तो···

नंदिनी—फिर क्या !

नेपथ्य से—फिर मैं अपना अन्तिम तोड़ना तोड़ दूँ। अनार के दाने फटफटाकर, जिस तरह दस अंगुलों के फाँक से अपना रस निकाल देते हैं, उसी प्रकार मैं अपने इन दोनों हाथों से···जाओ, जाओ ! अभी भाग जाओ, अभी !

नंदिनी—मैं यह खड़ी रही, क्या कर सकते हो, करो। इस तरह भद्दे ढंग से क्यों गरज रहे हो ?

नेपथ्य से—मैं कितना अद्‌भुत निष्ठुर हूँ, उसका समूचा प्रमाण तुम्हें दिखा देने की इच्छा हो रही है। मेरे घर में से कभी तुमने आर्तनाद नहीं सुना क्या ?

नंदिनी—सुना है। किसका आर्तनाद है वह ?

नेपथ्य से—मैं सृष्टिकर्ता की चातुरी तोड़ा करता हूँ। विश्व

के मर्मस्थल में जो कुछ छिपा हुआ है, उसे छीन लेना चाहता हूँ। उन्हीं छिने प्राणों की रुलाई है वह। पेड़ से यदि आग चुराना हो, तो उसे जला देना होता है। नंदिनी, तुम्हारे भीतर भी आग है—लाल आग! एक दिन जलाकर उस आग को निकाले बिना निस्तार नहीं।

नंदिनी—क्यों तुम इतने निष्ठुर हो?

नेपथ्य से—मैं या तो प्राप्त करूँगा या नष्ट कर दूँगा। जिसे मैं पा नहीं सकता उसपर दया नहीं कर सकता। उसे तोड़ देना भी एक तरह का पाना ही है।

नंदिनी—यह क्या! इस तरह मुक्का बाँधकर हाथ क्यों निकाल रहे हो?

नेपथ्य से—अच्छा, हाथ खींच लेता हूँ, तुम भाग जाओ, जैसे कबूतर बाज़ की छाया से भागता है, उसी तरह।

नंदिनी—अच्छा जाती हूँ, तुम्हें अब नहीं चिढ़ाऊँगी!

नेपथ्य से—सुनो सुनो, तुम लौट आओ! नंदिनी! नंदिनी!

नंदिनी—क्या कहते हो?

नेपथ्य से—सामने तुम्हारे मुँह पर और आँखों में जीवन की लीला खेल रही है और पीछे तुम्हारे काले केशों की धारा में ही मृत्यु का निस्तब्ध झरना है! मेरे ये दोनों हाथ उस दिन उसमें डूब मरने का आराम पा गए थे और कभी भी मैंने मृत्यु के माधुर्य को इस प्रकार नहीं सोचा था। इन गुच्छे-के-गुच्छे काले केशों के नीचे मुँह छिपाकर सोने की बड़ी इच्छा हो रही है। तुम नहीं जानतीं मैं कितना थका हूँ!

नंदिनी—तुम क्या कभी सोते नहीं?

नेपथ्य से—सोते डर लगता है ।

नंदिनी—तुमको मैं वह 'भालोबासि' गान पूरा सुना दूँ—प्यार करता हूँ, प्यार करता हूँ—इसी सुर में पास और दूर, जल और स्थल में वंशी बजा करती है। आकाश में किसके हृदय में पीड़ा हो रही है, दिगंत में किसकी काली आँखें आँखों के पानी से बही जा रही हैं।[१२]

नेपथ्य से—बस-बस, अब रहने दो, अब मत गाओ—

नंदिनी—

उसी सुर से समुद्र के किनारे बंधन खुल जाता है, अतल रोदन हिल उठता है। उसी सुर से अकारण ही मन में भूले हुए गान की बात, भूले हुए दिनों की हँसी और रुलाई याद आ जाती है।[१३]

पागल भाई, वह देखो, मरे मेढक को फेंककर वह जाने कब भाग गया है। वह गान सुनते डरता है।

विशू—उसकी छाती में जो बूढ़ा मेढक सब तरह के सुरों की छूत बचाकर बैठा हुआ है, वह जब गान सुनता है तो मर जाना चाहता है। इसीलिए उसे डर लगता है। पगली, आज तेरे मुख पर एक दीप्ति देख रहा हूँ, तेरे मन में किस भावना का अरुणोदय हुआ है—मुझे नहीं बताएगी ?

नंदिनी—मन में यह ख़बर आ पहुँची है कि आज रंजन निश्चिय ही आएगा।

विशू—निश्चत खबर किस तरफ़ से आई है ?

नंदिनी—सुनो बताती हूँ। मेरी खिड़की के सामने अनार की डाल पर रोज़ नीलकंठ पक्षी आकर बैठता है। मैं संध्या समय

रोज़ ध्रुवतारे को प्रणाम करके कहती हूँ कि उसके पंख से यदि एक पर उड़कर मेरे घर में आए तो समझूँगी कि मेरा रंजन आएगा। आज सवेरे उठते ही देखा कि उत्तरी हवा में उड़ता हुआ एक पर मेरे बिछौने पर आ गिरा है। यह देखो उस पर को अपने आँचल में बाँध रखा है।

विशू—यही तो देख रहा हूँ, और देखता हूँ आज तुमने माथे में बेंदी भी दी है।

नंदिनी—भेंट होने पर इस पर को मैं उसकी शिखा में पहना दूँगी।

विशू—लोग कहते हैं, नीलकंठ की पाँख में विजय-यात्रा का शुभ चिह्न होता है।

नंदिनी—रंजन की विजय-यात्रा मेरे हृदय के भीतर से होकर चलेगी।

विशू—पगली, अब मैं अपने काम पर जाऊँ।

नंदिनी—नहीं, आज तुमको काम नहीं करने दूँगी।

विशू—तो बता क्या करूँ?

नंदिनी—गान गाओ।

विशू—कौनसा गान?

नंदिनी—राह देखने का गान।

विशू—[गाता है]

उसने शायद युग-युग से मुझे चाहा था, वही शायद
मेरे रास्ते के किनारे बैठा हुआ है। आज मानो मुझे याद
आ रहा है कि न जाने कब, किस अस्फुट प्रदोष-वेला

में उसे आँखों देखा था, वही मानो मेरे रास्ते के किनारे आ बैठा है। आज आलोक-संगीत के साथ उस चाँद का वरण होगा, और रात के मुख का अंधकार इशारे से खुल जाएगा। शुक्ल रात्रि में उसी आलोक में, एक पलक में भेंट होगी और सभी आवरण खिसक जाएँगे। वही मानो मेरे रास्ते के किनारे बैठा हुआ है।[१४]

नंदिनी—पागल, जब तुम गाते हो, तो मुझे ऐसा मालूम होता रहता है, तुम्हें मुझसे बहुत-कुछ पाना था, पर मैं कुछ भी नहीं दे सकी।

विशू—तेरा यही कुछ भी नहीं देना मैं अपने सिर-माथे चढ़ा चला जाऊँगा। थोड़ा-कुछ देने की कीमत पर गान नहीं बेचूंगा—इस समय तू कहाँ जाएगी ?

नंदिनी—रास्ते के किनारे, जहाँ से रंजन आएगा। वहीं बैठी रहकर फिर तुम्हारा गान सुनूंगी।

[**दोनों का प्रस्थान**

[**सरदार और मुखिया का प्रवेश**]

सरदार—नहीं, इस मुहल्ले में रंजन को किसी तरह आने नहीं दिया जा सकता।

मुखिया—उसे दूर रखने के लिए ही तो वज्रगढ़ के सुरंग में काम करने को ले गया था।

सरदार—फिर क्या हुआ ?

मुखिया—किसी प्रकार उससे पार नहीं पाया गया। वह कहता, हुकुम मानकर काम करने का अभ्यास मुझे नहीं है।

सरदार—अभ्यास अभी शुरू कराने में क्या दोष है ?

मुखिया—यह कोशिश भी की गई। बड़ा सरदार कोतवाल को लेकर आया। लेकिन इस आदमी को डर-भय तो कहीं है ही नहीं, गले में ज़रा-सा शासन करने का स्वर आया नहीं कि ठठाकर हँस दिया। पूछने पर कहता है कि गम्भीरता मूर्ख का स्वाँग है, मैं उसीको हटाने आया हूँ।

सरदार—उसे सुरंग के भीतर दल में क्यों नहीं भिड़ा दिया?

मुखिया—दिया था, सोचा था कि दबाव में पड़कर वश मान जाएगा। लेकिन हुआ उलटा। ऐसा मालूम होने लगा कि खुदाई के मजूरों पर से भी दबाव कम हो गया। उनको भी मतवाला बना दिया, बोला—आज हम लोगों का खुदाई-नाच होगा।

सरदार—खुदाई-नाच? इसका क्या मतलब?

मुखिया—रंजन ने तान छेड़ दी, मजूरों ने कहा—ढोल कहाँ मिलेगा? उसने कहा—ढोल नहीं तो कुदाल तो है। फिर तो कुदाल पर ताल पड़ने लगे; सोने के पिंड लेकर कैसी विचित्र लोकौवल चलने लगी! बड़े मुखिया खुद आये, बोले—'यह कैसी तुम्हारे काम की धारा है?' रंजन बोला—'काम की रस्सी मैंने खोल दी है, उसे खींचकर नहीं चलाना होगा, वह नाचता हुआ चलेगा।'

सरदार—देखता हूँ, यह आदमी पागल है।

मुखिया—वज्र पागल! कहता हूँ, कुदाल पकड़ो। जवाब देता है, उससे अधिक काम होता यदि तुम एक सारंगी ले आ देते।

सरदार—तुम लोग उसे वज्रगढ़ ले गए थे; वहाँ से वह कुबेरगढ़ में कैसे आया?

मुखिया—क्या जाने, मालिक। उसे जंजीरों से तो कसके बाँधा गया था। थोड़ी देर बाद देखता हूँ, न जाने कैसे बिछलाकर निकल आया है—उसके शरीर को कुछ भी दबा के नहीं रख सकता। और वह बात-बात में साज बदल लेता है, चेहरा बदल लेता है। उसकी ताक़त अचरज-भरी है। यदि वह कुछ दिन और रहा, तो खुदाई के मजूर भी बन्धन नहीं मानेंगे।

सरदार—वह क्या? वह रंजन ही है न? रास्ते से गाना गाता हुआ चला है। कहीं से एक टूटी सारंगी जुगा ली है। हिमाक़त तो देखो, ज़रा छिपाने की भी चेष्टा नहीं है!

मुखिया—यही तो! न जाने कब गारद की भीत काटकर निकल आया है। जादू जानता है।

सरदार—जाओ, इस बार पकड़ो उसे। ख़याल रखो, इस मुहल्ले में नंदिनी के साथ उसकी मुलाक़ात किसी प्रकार न होने पावे।

मुखिया—देखते-देखते उसका दल भारी होता जा रहा है। कभी हम लोगों समेत वह सबको नचा देगा!

[छोटे सरदार का प्रवेश]

सरदार—कहाँ चले हो?

छोटा सरदार—रंजन को बाँधने चला हूँ।

सरदार—तुम क्यों? मझले सरदार कहाँ हैं।

छोटा सरदार—उसे देखकर उन्हें ऐसा मज़ा आया है कि उसके बदन पर हाथ देना ही नहीं चाहते। कहते हैं—उसकी हँसी देखकर समझ पाता हूँ कि हम सरदार लोग कितने अद्भुत हो गए हैं।

सरदार—सुनो, उसे बाँधना नहीं होगा। राजा के घर में भेज दो।

छोटा सरदार—वह तो राजा के बुलावे को मानना ही नहीं चाहता।

सरदार—उसे कह दो कि राजा उसकी नंदिनी को सेवादासी बना के रखे हुए हैं।

छोटा सरदार—लेकिन राजा यदि···

सरदार—सोच-विचार की कोई ज़रूरत नहीं, चलो मैं स्वयं जाता हूँ।

[**सबका प्रस्थान**

[**अध्यापक और पुराणवागीश का प्रवेश**]

पुराणवागीश—भीतर यह कैसा प्रलयकाण्ड हो रहा है, बताओ तो? बड़ा भयंकर शब्द हो रहा है जा!

अध्यापक—जान पड़ता है राजा अपने ऊपर खुद ही बिगड़ पड़ा है, इसीलिए, अपनी ही तैयार को हुई किसी चीज़ को तोड़-फोड़ रहा है।

पुराणवागीश—जान पड़ता है, बड़े-बड़े खम्भे भड़भड़ाकर गिरे जा रहे हैं।

अध्यापक—हमारे उस पहाड़तले से लगा हुआ उसीके बरोबर एक तालाब था, उसीमें शंखिनी नदी का पानी इकट्ठा हुआ करता था। एक दिन उसकी बाईं ओर का ऊँचा टीला झुक गया और जमा हुआ पानी पागल के अट्टहास की तरह खिलखिलाता हुआ बाहर निकल गया। कुछ दिन से राजा को देखकर जान

पड़ता है कि उसके संचय-सरोवर के पत्थर में भी चाड़ लगा है। उसका तला भीतर-ही-भीतर खधर गया है।

पुराणवागीश—वस्तुवागीश, यह किस स्थान में मुझे ले आए हैं और यहाँ करना क्या है ?

अध्यापक—जगत् में जो कुछ जानने को है, उस सब-कुछ को वह जानने के द्वारा ही आत्मसात् करना चाहता है। मेरी वस्तु-तत्त्व-विद्या को तो उसने प्रायः सब-का-सब ढलवा लिया है, अब रह-रहकर बिगड़ उठता है और कहता है—'तुम्हारी विद्या तो सेंध मारने की सावर से एक दीवाल तोड़कर उसके पीछे एक और दीवाल निकालती रही है। किन्तु प्राण-पुरुष का भीतरी महल कहाँ है ?' मैंने सोचा, उसे कुछ दिन के लिए पुराण-चर्चा में भुलवा रखा जाए—मेरी थैली तो झाड़ ली जा चुकी है, अब पुरावृत्त की पाकेटमारी चले। वह देख रहे हो कौन जा रही है ?

पुराणवागीश—एक लड़की, धानी रंग की साड़ी पहने हुई।

अध्यापक—पृथ्वी की प्राणों-भरी खुशी को अपने सारे शरीर में खींच लिया है, इस हमारी नंदिनी ने। इस यक्षपुरी में सरदार हैं, मुखिया हैं, खुदाई करनेवाले मज़दूर हैं, मेरे जैसा पंडित है, कोतवाल है, जल्लाद है, मुर्दफ़राश है, सभी मज़े में मिल गए हैं, किन्तु वह एकदम बेमेल है। चारों ओर है हाट का हो-हल्ला, वह है सुर-बँधा तम्बूरा। एक-एक दिन उसके चले जाने की हवा से ही मेरी वस्तुचर्चा का जाल फट जाता है। उसी के फाँक में से मेरा ध्यान जंगली चिड़िया की तरह हुश करके निकल भागता है।

पुराणवागीश—कहते क्या हो ! तुम्हारी पक्की हड्डी भी ठकठका उठती है क्या ?

अध्यापक—जानने के आकर्षण की अपेक्षा जब प्राण का आकर्षण ज्यादा हो जाता है, तभी पाठशाला से भागने की प्रवृत्ति सँभाल के बाहर हो जाती है ।

पुराणवागीश—अच्छा, अब बताओ तुम्हारे राजा से कहाँ भेंट होगी ?

अध्यापक—भेंट होने का उपाय नहीं है । उस जाल की ओट से बातचीत होगी ।

पुराणवागीश—क्या कहा, इस जाल की ओट से ?

अध्यापक—और नहीं तो क्या । घूँघट की ओट से जिस तरह रसालाप होता है उस ढंग का नहीं, एक छनी हुई बात,—बीन-बराकर शुद्ध की हुई । उसके घर की गाय शायद दूध देना नहीं जानती, एकदम मक्खन देती है ।

पुराणवागीश—बेकार बातें छोड़कर असली बात वसूल कर लेना ही तो पण्डित का अभिप्राय होता है ।

अध्यापक—किन्तु विधाता का नहीं । उन्होंने असली चीज़ की सृष्टि ही की है बेकार चीज़ों का लालन करने के लिए । वे सम्मान देते हैं फल की गुठली को और प्रेम देते हैं उसके गूदे को ।

पुराणवागीश—आजकल देखता हूँ तुम्हारा वस्तु-तत्त्व धानी रंग की ओर ही सरपट दौड़ पड़ा है । किन्तु अध्यापक, तुम अपने इस राजा को बरदाश्त कैसे कर पाते हो ?

अध्यापक—सच बताऊँ ? मैं उसे प्यार करता हूँ ।

पुराणवागीश—कहते क्या हो तुम !

अध्यापक—तुम नहीं जानते, वह इतना बड़ा है कि उसके दोष भी उसे नष्ट नहीं कर सकते।

[सरदार का प्रवेश]

सरदार—अजी वस्तुवागीश, चुन-चुनके इसी आदमी को ले आए हो। इनकी विद्या का ब्योरा सुनकर ही हमारा राजा बिगड़ उठा है।

अध्यापक—सो क्यों ?

सरदार—राजा कहता है कि पुराण नाम की कोई चीज़ है ही नहीं, वर्तमान काल ही सिर्फ बढ़ता चल रहा है।

पुराणवागीश—पुराण यदि नहीं है, तो फिर कुछ भी कैसे है ? पीछे यदि न हो, तो सामने रह ही क्या सकता है ?

सरदार—राजा कहते हैं, महाकाल नवीन को सामने प्रकाशित करता हुआ चल रहा है ! इस बात को पण्डित दबा देता है और कहता है, महाकाल पुरातन को अपने पीछे ढोए लिये जा रहा है।

अध्यापक—नंदिनी के निविड़ यौवन की छाया-वीथिका में नवीन की मायामृगी को राजा चकित भाव से देख सके हैं, किन्तु पकड़ नहीं सके हैं, और बिगड़ उठे हैं मेरे वस्तु-तत्त्व के ऊपर।

[नंदिनी का तेज़ी से प्रवेश]

नंदिनी—सरदार, सरदार यह क्या ! वे कौन हैं !

सरदार—सुनो नंदिनी, जब घोर रात होगी तब तुम्हारे कुन्द फूल की माला पहनूँगा। जब अँधेरे में मेरा रुपये में बारह आना ही अस्पष्ट हो चलेगा उस समय शायद फूल की माला मुझे फबेगी।

नंदिनी—उधर देखो, कैसा भयानक दृश्य है ! प्रेतपुरी का

दरवाज़ा खुल गया है क्या ? पहरेदारों के साथ वे कौन चले हैं, वे जो राजा के महल के खिड़की-दरवाज़ों से निकल आ रहे है ?

सरदार—उनको हम राजा का जूठन कहते हैं ।

नंदिनी—क्या मतलब है ?

सरदार—मतलब एक दिन तुम भी समझोगी, आज रहने दो।

नंदिनी—किन्तु कैसे चेहरे हैं ये ? ये क्या मनुष्य हैं ? उनमें मांस-मज्जा, मन-प्राण क्या-कुछ है ?

सरदार—शायद नहीं ।

नंदिनी—किसी दिन था ?

सरदार—शायद था ।

नंदिनी—अब कहाँ चला गया ?

सरदार—वस्तुवागीश, समझा सको तो समझा दो, मैं चला ।

[**प्रस्थान**

नंदिनी—वह क्या है? उन छाया-मूर्तियों में पहचाने मुखड़े देख रही हूँ । वे दोनों तो जरूर ही हमारे अनूप और उपमन्यु हैं । अध्यापक, वे लोग हमारे पड़ोसी गाँव के वाशिंदे हैं । दोनों भाई सिर के जितने लम्बे हैं, शरीर के उतने ही पुख्ता भी; लोग इन्हें ताल-तमाल कहा करते हैं । आषाढ़ चतुर्दशी को हमारी नदी में नाव-दौड़ खेलने आये थे । हाय-हाय, छाती फटती है, किसने इनकी यह दशा कर रखी है ? वह तो शकलू दिख रहा है, तलवार के खेल में सबके आगे माला पाता था । अ-नू-प, शकलू—इधर देखो, इधर मैं हूँ नंदिनी, ईशानी पाड़ा कि तुम्हारी नंदिनी । सिर उठाकर देखा भी नहीं । हमेशा के लिए सिर नीचा हो गया है । अरे वह कौन है ? कंकू ? हाय रे, उसके जैसे लड़के

को भी ईख की तरह चूस लिया है। बड़ा लजीला था; जिस घाट में पानी ले आने जाती उसीके पास ढालू किनारे पर बैठा रहता। ऐसा भान करता मानो तीर चलाने के लिए सरकंडे लेने आ गया है। शैतानी करके मैंने उसे कितना दुःख दिया है। अरे ओ कंकू, ज़रा मेरी ओर घूम कर ताक। हाय-हाय, मेरे इशारे पर जिसका रक्त नाच उठता था, उसने मेरी पुकार पर जवाब तक नहीं दिया ? बुझ गई है मेरे गाँव की सब रोशनी, बुझ गई ! अध्यापक, लोहा घिस गया है, सिर्फ काला मोरचा ही बाक़ी है। ऐसा क्यों हुआ ?

अध्यापक—नंदिनी, जिधर रास्ता है उसी तरफ तुम्हारी नज़र जाती है। इस बार लौ की ओर भी देखो, देखोगी कि उसकी जीभ लपलपा रही है।

नंदिनी—तुम्हारी बात मैं नहीं समझ सकती।

अध्यापक—राजा को तो देखा है ? उसकी मूर्ति देखकर, सुना है कि तुम्हारा मन मुग्ध हो गया है।

नंदिनी—ज़रूर हुआ है। वह जो अद्भुत शक्ति का चेहरा है।

अध्यापक—वह अद्भुत जिसका जमा है, यह किम्भूत उसीका का खर्च है। ये छोटे-छोटे सब जलकर होते रहते हैं राख और वह बड़ा जलता रहता है लौ के रूप में। यही है बड़ा होने का तत्त्व।

नंदिनी—वह तो राक्षस का तत्त्व है।

अध्यापक—तत्त्व पर बिगड़ना फजूल है। वह अच्छा भी नहीं होता, बुरा भी नहीं होता। जो होता है सो होता है, उसके विरुद्ध जाओ तो होने के ही विरुद्ध जाओगी।

नंदिनी—यही यदि मनुष्य का होने का रास्ता है, तो नहीं चाहती मैं होना—मैं उन छाया-मूर्तियों के साथ चली जाऊँगी—मुझे रास्ता दिखा दो।

अध्यापक—रास्ता दिखाने का जब दिन आएगा तो ये लोग ही दिखा देंगे, उसके पहले रास्ता नामक कोई बला नहीं है। देखो न, पुराणवागीश न जाने कब धीरे से खिसक पड़े हैं, सोचते हैं—भागकर बच जाएँगे। ज़रा आगे जाकर ही समझ सकेंगे कि घेरे का जाल यहाँ से लेकर बहुत योजन दूर तक खूँटियों में बँधा है। नंदिनी नाराज़ हो रही हो तुम ? तुम्हारे कपोल पर लाल कनेर का गुच्छ आज प्रलय-संध्या के मेघ के समान दीख रहा है।

नंदिनी—(खिड़की को धक्का मारकर) सुनो, सुनो !

अध्यापक—किसे बुला रही हो तुम ?

नंदिनी—जाल के कुहासे से ढके हुए तुम्हारे राजा को।

अध्यापक—भीतर के किवाड़ बन्द हो गए हैं, आवाज़ नहीं सुन सकेगा।

नंदिनी—विशू पागल, पागल भाई !

अध्यापक—उसे क्यों बुला रही हो ?

नंदिनी—वह अब तक लौटा नहीं, मुझे बड़ा डर लग रहा है।

अध्यापक—ज़रा पहले तुम्हारे ही साथ तो देखा था उसे।

नंदिनी—सरदार ने कहा है कि रंजन को पहचनवाने के लिए उसकी बुलाहट हुई है। मैं साथ जाना चाहती थी, जाने नहीं दिया। वह किसकी चीख सुनाई दे रही है।

अध्यापक—जान पड़ता है उस पहलवान की है।

नंदिनी—वह कौन है ?

अध्यापक—वही, वह जगद्विख्यात गज्जू पहलवान, जिसका भाई भजन हिमाक़त करके राजा से कुश्ती लड़ने आया था। फिर तो उसकी लंगोटी का एक धागा भी कहीं दिखाई नहीं दिया। उसी गुस्से से गज्जू भी ताल ठोकता आया। मैंने शुरू में ही उससे कह दिया था कि इस राज्य में सुरंग खोदने आना चाहते हो तो आओ, मरते-मरते भी कुछ दिन जीते रहोगे। और अगर मर्दानगी दिखानी हो, तो एक क्षण भी नहीं बर्दाश्त की जाएगी। यह स्थान बहुत कठिन है।

नंदिनी—दिन-रात इस आदमी बुझाने वाली जाल की खबरदारी करके ये लोग क्या कुछ भी अच्छे रह पाते हैं ?

अध्यापक—अच्छे का सवाल इसमें नहीं है, रहने का सवाल है। इनका यह रहना इतने भयंकर रूप से बढ़ गया है कि लाख-लाख आदमियों पर यदि दबाव न पड़े, तो इनके इस भार को सँभालेगा कौन ?

नंदिनी—रहना ही होगा ? मनुष्य होकर रहने के लिए यदि मरना ही हो, तो उसमें दोष क्या है ?

अध्यापक—फिर वही गुस्सा ? उसी लाल कनेर की झंकार ! खूब मधुर है, फिर भी जो सत्य है वह सत्य है। रहने के लिए मरना है, ऐसा कहने में तुम्हें सुख मिलता हो तो कह लो। किन्तु रहते वही लोग हैं जो कहते हैं कि रहने के लिए मारना होगा। तुम लोग कहती हो इससे मनुष्यत्व में त्रुटि आती है पर गुस्से के कारण भूल जाती हो कि यही मनुष्यत्व है। बाघ को खाकर बाघ नहीं बड़ा होता। सिर्फ मनुष्य ही मनुष्य को खाकर फूल उठता है।

[पहलवान का प्रवेश]

नंदिनी—आहा, किस तरह ढुलकता-ढिमलाता आ रहा है। पहलवान, यहीं सो रहो। अध्यापक, देखो ना, कहाँ इसे चोट लगी है?

अध्यापक—बाहर से चोट का निशान देख ही नहीं सकोगी।

पहलवान—दयामय प्रभो, ऐसा हो कि मैं जीवन में एक दिन शक्ति पाऊँ, सिर्फ एक दिन के लिये भी!

अध्यापक—काहे वास्ते भाई!

पहलवान—सिर्फ उस सरदार की गरदन मरोड़ देने के लिए।

अध्यापक—सरदार ने तुम्हारा क्या किया है?

पहलवान—सब कुछ उसी ने तो किया है। मैं तो लड़ना ही नहीं चाहता था। आज कहता फिरता है कि मेरा ही दोष था।

अध्यापक—क्यों भई, इसमें उनका क्या स्वार्थ है?

पहलवान—यदि समस्त पृथ्वी को शक्तिहीन कर दें तभी वे निश्चिन्त होंगे। दयानिधान भगवान्, ऐसा करो कि एक दिन उसकी दोनों आँखें उखाड़ कर फेंक सकूँ, उसकी जीभ खींचकर निकाल बाहर करूँ।

नंदिनी—तुम्हें कैसा लग रहा है पहलवान?

पहलवान—ऐसा जान पड़ता है कि शरीर भीतर से पोला हो गया है। ये लोग न जाने कहाँ के दानव हैं, जादू जानते हैं, सिर्फ ज़ोर ही नहीं, साहस तक सोखते हैं। यदि किसी उपाय से एक बार—हे कल्याणमय हरि, आः यदि एक बार—तुम्हारी दया होने से क्या नहीं हो सकता! सरदार की छाती में यदि एक बार दाँत गड़ा सकूँ!

नंदिनी—अध्यापक, इसे तुम पकड़ो, हम दोनों मिलकर इसे घर पर ले चलें।

अध्यापक—मुझमें साहस नहीं है नंदिनी ! यहाँ के नियमानुसार इसमें अपराध होगा।

नंदिनी—मनुष्य को मरने देने में अपराध नहीं होगा ?

अध्यापक—जिस अपराध का दण्ड देने वाला कोई नहीं है, वह पाप हो सकता है किन्तु अपराध नहीं। नंदिनी, इन सब में से तुम एक बारगी निकल आओ। जड़ की मुट्ठी बाँधकर पेड़ मिट्टी के नीचे हरण-शोषण का कार्य करता है, किन्तु वहाँ फूल तो नहीं खिला सकता। फूल खिलता है ऊपर की डाल में, आकाश की ओर। ओ लाल कनेर, हमारी मिट्टी के नीचे की खबर लेने मत आओ। हम टक लगाये बैठे हैं कि ऊपर की हवा में तुम्हारा झूला झूलना देखेंगे। वह सरदार आ रहा है। तो फिर मैं हटूँ। तुम्हारे साथ बात करता हूँ, यह वह नहीं सह सकता।

नंदिनी—मेरे ऊपर इतना गुस्सा क्यों ?

अध्यापक—अन्दाज़ से कह सकता हूँ। तुमने भीतर-ही-भीतर उसके मन के तार को खींचा है; जितना ही सुर नहीं मिल रहा है, बेसुर उतना ही कड़ा होकर चिल्ला उठता है।

[**प्रस्थान**

[**सरदार का प्रवेश**]

नंदिनी—सरदार !

सरदार—नंदिनी, तुम्हारे उस कुन्द फूल की माला को देखकर गोसाईंजी की दोनों आँखें—यह लो वे खुद आ रहे हैं। प्रणाम ! प्रभु, वह माला नंदिनी ने मुझे दी थी।

[गोसाईंजी का प्रवेश]

गोसाईं—अहा, शुभ्र प्राणों का दान ! भगवान् के शुभ्र कुन्द पुष्प ! विषयी जन के हाथ में पड़कर भी उसकी शुभ्रता म्लान नहीं हुई, इसीसे तो पुण्य की शक्ति और पापी के परित्राण की आशा देख पाता हूँ।

नंदिनी—गोसाईंजी, इस आदमी की कोई व्यवस्था कीजिए। इसके जीवन का बाकी ही कितना-सा रह गया है।

गोसाईं—सब ओर से विचारकर जिस मात्रा में इसका जीना ज़रूरी है हमारे सरदार निश्चय ही उतना जीवित रखेंगे। किन्तु वत्से, यह सब आलोचना तुम्हारे मुँह से श्रुतिकटु लगती है। हम पसन्द नहीं करते।

नंदिनी—इस राज्य में जीवित रखने का भी मात्रा-विचार है क्या ?

गोसाईं—क्यों नहीं है ? पार्थिव जीवन सीमाबद्ध है न ? इसीलिए हिसाब समझकर उसका बँटवारा करना होता है। हमारी श्रेणी के लोगों पर भगवान् ने दुस्सह उत्तरदायित्व का बोझा लाद दिया है, उसको ढोने के लिए हमारे हिस्से में प्राण का सारांश कुछ अधिक मिलना चाहिए। ये लोग खूब कम जिएँ तो भी काम चल जाएगा, क्योंकि उनका भार कम करने के लिए हम लोग जीते हैं। यह क्या उनके लिए कम बचाव है ?

नंदिनी—गोसाईंजी, भगवान् ने तुम्हारे ऊपर इनका कौन-सा उपकार करने का विषम बोझ लाद दिया है ?

गोसाईं—जो प्राण सीमाबद्ध नहीं है उसमें हिस्सा बँटाने के लिए किसी के साथ किसी के झगड़े की कोई ज़रूरत ही नहीं

है, हम गोसाई लोग उसी प्राण का रास्ता दिखाने आए हैं। इसीसे यदि वे सन्तुष्ट रहें, तभी हम उनके हितू हैं।

नंदिनी—तब क्या यह आदमी अपने सीमाबद्ध प्राण को लेकर, इसी तरह अधमरा होकर पड़ा रहेगा ?

गोसाईं—पड़ा क्यों रहेगा भला? क्यों सरदार, क्या कहते हो?

सरदार—ठीक कहते हैं आप, पड़ा क्यों रहने दूंगा ! आज से अपने ज़ोर से चलने की उसे ज़रूरत ही नहीं होगी। हम अपने ही ज़ोर से उसे चलाते फिरेंगे। अरे गज्जू !

पहलवान—क्या प्रभु !

गोसाईं—हरि हरि, इसी बीच उसका गला खासा महीन हो उठा है। अपने नाम-कीर्तन के दल में उसे खींच सकूंगा, ऐसा लगता है।

सरदार—ह-क्ष मुहल्ले के मुखिये के घर में तेरा डेरा हुआ है, चला जा वहीं।

नंदिनी—यह कैसी बात ! वह चलेगा कैसे !

सरदार—देखो नंदिनी, आदमी चलाना ही हम लोगों का व्यवसाय है। हम जानते हैं कि आदमी जहाँ आकर थोबर लटका-कर पड़ रहता है वहाँ थोड़ा ज़ोर मारने से और भी थोड़ी दूर जा सकता है। जाओ गज्जू !

पहलवान—जो हुकुम।

नंदिनी—पहलवान, मैं भी जाती हूँ मुखिया के घर, वहाँ तुम्हें देखने वाला कोई नहीं है।

पहलवान—नहीं नहीं, रहने दो, सरदार गुस्सा करेगा।

नंदिनी—मैं सरदार के गुस्से से नहीं डरती।

पहलवान—मैं डरता हूँ, दुहाई है मेरी बिपदा मत बढ़ाओ।
[प्रस्थान

नंदिनी—सरदार, जाओ मत, कहते जाओ मेरे विशू पागल को कहाँ ले गए हो ?

सरदार—मैं ले जाने वाला कौन होता हूँ। मेघ को हवा उड़ा ले जाती है, इसे यदि दोष समझो तो हवा से पूछो कि उसे ठेलता कौन है ?

नंदिनी—यह कैसा सत्यानाशी देश है जी ! तुम भी आदमी नहीं हो और जिन्हें चलाते हो वे भी आदमी नहीं हैं ? तुम लोग हवा हो, वे मेघ हैं ? गोसाईं, तुम ज़रूर जानते हो। बताओ मेरा विशू पागल कहाँ है ?

गोसाईं—मैं ज़रूर जानता हूँ। जो जहाँ रहते हैं सब भले के लिए ही।

नंदिनी—किसके भले के लिए ?

गोसाईं—सो तुम नहीं समझोगी। आः छोड़ो, छोडो, वह मेरी जपमाला है। लो वह टूट गई ! ऐ सरदार, तुम लोगों ने जो इस लड़की को···

सरदार—न मालूम कैसे वह यहाँ के नियमों के फाँक में जगह पा गई है। खुद हमारे राजा···

गोसाईं—अजी देखो, इस बार मेरा राम-नामा तक फाड़ डालेगी, आफ़त है ! मैं चला। [प्रस्थान

नंदिनी—सरदार, तुम्हें बताना ही पड़ेगा। बताओ मेरे विशू पगले को कहाँ ले गए हो ?

सरदार—विचारशाला में उसकी बुलाहट हुई है—इससे अधिक कुछ कहने को नहीं है। मुझे छोड़ो, बहुत काम पड़े हैं।

नंदिनी—मैं स्त्री हूँ, इसीलिए तुम मुझसे नहीं डरते? विद्युत्-शिखा के हाथों इन्द्र अपना वज्र भेज देते हैं। मैं वही वज्र लेकर आई हूँ, तुम्हारी सरदारी का स्वर्ण-शिखर टूटेगा।

सरदार—तो सच्ची बात तुमको बता जाऊँ। विशू की आफ़त तुम्हींने बुलाई है।

नंदिनी—मैंने?

सरदार—हाँ, तुमने ही। इतने दिन तक कीड़े की तरह निःशब्द मिट्टी के नीचे गड्ढा खोदकर वह चला था, उसे मरने के लिये पंख फड़फड़ाना तुम्हींने सिखाया है, तुम्हींने ओ इन्द्रदेव की आग! बहुतों को इसमें ढकेलोगी, तब अन्त में तुममें-हममें समझौता होगा। ज़्यादा देर नहीं है।

नंदिनी—वही हो, किन्तु एक बात बताते जाओ, मेरे साथ रंजन की भेंट होने दोगे या नहीं?

सरदार—हरगिज़ नहीं।

नंदिनी—हरगिज़ नहीं? देखूँगी कितनी ताक़त है तुममें! उसके साथ मेरा मिलना होकर ही रहेगा। ज़रूर होगा, और आज ही। तुम्हें बताए देती हूँ।

[**सरदार का प्रस्थान**

नंदिनी—[खिड़की को धक्का मारकर] राजा, ओ राजा, सुनो! तुम्हारी विचारशाला कहाँ है? मैं तुम्हारे इस जाल के परदे को तोड़ दूँगी। वह कौन—वह कौन है! यह किशोर दिखता है। बोल तो किशोर, तुझे मालूम है हमारा विशू कहाँ है?

किशोर—हाँ नंदिनी, अभी उसके साथ तुम्हारी भेंट होगी; दिल मज़बूत कर रखो। पता नहीं पहरेदारों के मालिक ने मेरा मुँह देखकर दया क्यों दिखायी ? मेरे अनुरोध पर इसी रास्ते विशू को ले जाने को राज़ी हुआ है।

नंदिनी—पहरेदारों का मालिक ! तो क्या…

किशोर—हाँ, वह देखो, आ रहा है।

नंदिनी—यह क्या, तुम्हारे हाथ में हथकड़ी ! पागल भाई, तुम्हें ये लोग इस तरह कहाँ ले चले हैं ?

[**विशू को लिये हुए पहरेदारों का प्रवेश**]

विशू—डर नहीं है, कुछ डर की बात नहीं है ! पगली, इतने दिन बाद मेरी मुक्ति हुई है।

नंदिनी—क्या कहते हो कुछ समझ में नहीं आ रहा है।

विशू—जब डर के मारे पद-पद पर विपत्तियों को सम्हालता हुआ चलता था तब मैं छूटा हुआ था। उस छूट के समान बन्धन और कुछ नहीं है।

नंदिनी—तुमने क्या दोष किया है कि ये तुम्हें बाँधे लिये जा रहे हैं ?

विशू—इतने दिनों बाद आज सच्ची बात कह दी थी।

नंदिनी—इसमें दोष क्या हुआ ?

विशू—कुछ नहीं।

नंदिनी—तो फिर इस प्रकार बाँधा क्यों ?

विशू—इसमें नुकसान क्या हुआ ? सत्य में मैंने मुक्ति पाई है—यह बन्धन इसी बात का सत्य-साक्षी हो रहा है।

नंदिनी—वे तुम्हें पशु की तरह बाँधकर लिये जा रहे हैं, उन्हें खुद लज्जा नहीं लग रही ? छी-छी, वे भी तो आदमी ही हैं !

विशू—उनके भीतर जो एक प्रकाण्ड पशु बैठा हुआ है—मनुष्य के अपमान से उनका सिर नीचा नहीं होता, सिर्फ भीतर के पशु की पूँछ फूलती रहती है, हिलती रहती है !

नंदिनी—आहा, पागल भाई, तुम्हें इन्होंने मारा भी है क्या ? तुम्हारे शरीर पर ये गोहिए कैसे हैं ?

विशू—चाबुक मारा है, जिस चाबुक से कुत्तों को पीटते हैं उसीसे। जिस रस्सी से यह चाबुक तैयार हुआ है, उसी रस्सी के सूत से इनके गोसाईं की जयमाला भी तैयार हुई है। जब ये लोग ठाकुर का नाम जपते हैं, तो इस बात को भूल जाते हैं, पर ठाकुर याद रखते हैं।

नंदिनी—मुझे भी तुम्हारे साथ ऐसे ही बाँध ले जाएँ भाई मेरे ! तुम्हारी इस मार में से मैं भी कुछ हिस्सा यदि न पाऊँ तो आज से मुँह में अन्न नहीं रुचेगा।

किशोर—विशू, यदि मैं कोशिश करूँ, तो वे ज़रूर तुम्हारे बदले मुझे ले जा सकते हैं। तुम ऐसी ही अनुमति करो।

विशू—यह तू पागल सरीखी बात कर रहा है।

किशोर—सज़ा तो मुझे तकलीफ़ देने से रही। मेरी उमर कम है, मैं खुशी-खुशी सह लूँगा।

नंदिनी—नहीं नहीं किशोर, तू ऐसी बात मत कह।

किशोर—नंदिनी, आज मैंने काम में कोताही की है, उनको इसकी खबर लग गई है। मेरे पीछे उन्होंने कुत्ता लगा रखा है। वे मेरा जो अपमान करेंगे उससे यह सज़ा मुझे बचा लेगी।

विशू—नहीं किशोर, अब पकड़े जाने से काम नहीं चलेगा, एक खतरा-भरा काम करना है। रंजन यहाँ आ गया है, जैसे हो उसे बाहर निकालना होगा। सीधा काम नहीं है।

किशोर—नंदिनी, तो फिर मैं विदा हुआ। रंजन के साथ भेंट होने पर तुम्हारी कौनसी बात उसे बताऊँगा?

नंदिनी—कुछ नहीं। उसे वह लाल कनेर का गुच्छा दे देना, इसीसे मुझे जो कुछ कहना है, सब कहा जाएगा।

[किशोर का प्रस्थान

विशू—इस बार रंजन से तुम्हारा मिलन हो!

नंदिनी—अब मुझे मिलन में सुख नहीं मिलेगा। यह बात मैं कभी भूल न सकूँगी कि तुम्हें खाली हाथों विदा किया था। और वह बेचारा बालक किशोर है, उसने ही मुझसे क्या पाया भला?

विशू—मन में तुमने जो आग जला दी है, उसके प्रकाश में उसके अन्तर का सब धन प्रकट हो गया है। और चाहिए ही क्या? याद है न, वह नीलकण्ठ की पाँख रंजन के चूड़े में पहना देनी होगी?

नंदिनी—यह क्या है मेरी छाती के आँचल में?

विशू—पगली, फ़सल कटने को वह गान सुन रही है।

नंदिनी—सुन रही हूँ, प्राण रो उठते हैं।

विशू—मैदान की लीला समाप्त हुई, खेत का मालिक पकी फ़सल लेकर घर चला। चलो प्रहरी, अब अधिक देर करना ठीक नहीं—

फ़सल का अन्तिम समय है, अब इसे काट लो और
गट्ठर बाँध लो। काटने लायक जो कुछ नहीं है, उसको
छोड़ दो। मिट्टी के साथ मिलकर उसे मिट्टी हो जाने दो।[१५]

[सबका प्रस्थान

[चिकित्सक और सरदार का प्रवेश]

चिकित्सक—राजा अपने ऊपर आप ही बिगड़ पड़ते हैं, यह रोग बाहर का नहीं है मन का है।

सरदार—इसका प्रतिकार क्या है ?

चिकित्सक—कोई ज़बरदस्त-सा धक्का। या तो वह दूसरे राज्य के साथ हो, या नहीं तो फिर अपनी ही प्रजाओं में उत्पात लगा देना।

सरदार—अर्थात् यदि वे और किसी का नुकसान नहीं कर सकेंगे तो अपना ही कर बैठेंगे।

चिकित्सक—ये बड़े आदमी हैं बड़े। बच्चे सरीखे खेला करते हैं। एक खेल से जब नाराज़ होते तब अगर और एक खेल न जुगा दिया जाए तो अपना ही खिलौना तोड़ देते हैं। किन्तु तैयार रहो सरदार, अब ज़्यादा देर नहीं है।

सरदार—लक्षण देखकर मैंने आगे से ही सब तैयारी कर रखी है। किन्तु हाय-हाय, दुःख की क्या बताऊँ ! हमारी स्वर्ण-पुरी उस समय जैसे ऐश्वर्य से भर उठी थी, वैसा और कभी नहीं हुआ था, ठीक उसी समय···अच्छा जाओ, सोच देखता हूँ !

[चिकित्सक का प्रस्थान

[मुखिया का प्रवेश]

मुखिया—सरदार महाराज, आपने बुलाया है ? मैं महाल का मुखिया हूँ।

सरदार—३२१ तुम्हीं हो न ?

मुखिया—क्या ग़ज़ब की याददाश्त है मालिक की ! मेरे जैसे

अपात्र को भी नहीं भूलते।

सरदार—देश से मेरी स्त्री आ रही है। तुम्हारे महाल के पास डाक बदलेगी। शीघ्र ही यहाँ पहुँचा देना होगा।

मुखिया—मुहल्ले में बैलों की मरकी पड़ी है, गाड़ी खींचने के लिए बैलों का अभाव है। खैर, देखा जाएगा, खुदाई करने वाले मज़दूरों को जोत दिया जाएगा।

सरदार—जानते हो न कहाँ जाना होगा ? बागान-बाड़ी में जहाँ सरदारों का भोज है।

मुखिया—जाता हूँ, लेकिन एक बात बताता जाऊँ। ज़रा कान दें। वह जो ६९ ङ है, जिसे लोग-बाग विशू पगला कहते हैं, उसका पागलपन सुधारने का वक्त आ गया है।

सरदार—क्यों ? तुम्हारे यहाँ उत्पात करता है क्या ?

मुखिया—मुँह से नहीं, भाव-भंगी से !

सरदार—अब कोई चिन्ता नहीं। समझे ?

मुखिया—ऐसा ? तो फिर ठीक है। और एक बात, वह जो ४७ फ है, वह ६९ ङ से कुछ ज़्यादा मिलता-जुलता है।

सरदार—मैंने यह भी लक्ष्य किया है।

मुखिया—मालिक का लक्ष्य तो ठीक है, फिर भी चारों ओर नज़र रखनी पड़ती है कि नहीं, इसीलिए दो-एक छूट भी जा सकते हैं। यही देखिए ना, हमारा ९५, गाँव के नाते मेरा फुफुआ-ससुर होता है—अपनी पसली की हड्डियों से सरदार महाराज के झाड़ूबर्दार का खड़ाऊँ बना देने को तैयार है, स्वामि-भक्ति को देखकर स्वयं उसकी सहधर्मिणी भी लज्जा से सिर नीचा कर लेती है, और फिर भी आज तक···

सरदार—उसका नाम बड़ी वही में चढ़ गया है।

मुखिया—चलो, इतने दिनों की सेवा सार्थक हुई है। उसे सावधानी के साथ ख़बर सुनानी होगी, उसे मृगी रोग भी है, अचानक…

सरदार—अच्छा, सो होता रहेगा, तुम जल्दी करो।

मुखिया—और एक आदमी की बात कहनी है—होता तो वह मेरा अपना सगा साला ही है, लेकिन उसकी माँ जब मर गई तो मेरी घरवाली ने उसे अपने हाथों पाल-पोसकर बड़ा किया है, तो भी जब मालिक का नमक…

सरदार—उसकी बात कल होगी, तुम दौड़कर चले जाओ।

मुखिया—मझले सरदार बहादुर वह आ रहे हैं। उन्हें मेरी ओर से ज़रा समझा दें हुजूर। मेरे ऊपर उनकी नेक नज़र नहीं है। मुझे ऐसा लगता है कि जब मालिक लोगों के इलाके में ६९ ङ आया-जाया करता था, तभी उसने मेरे नाम…

सरदार—नहीं-नहीं, किसी दिन उसे तुम्हारा नाम लेते नहीं सुना।

मुखिया—वही तो उसकी चालाकी है। जो नामी आदमी है, उसका नाम दबाकर ही तो उसे मारा जाता है। छल-बल से, इशारे से, लगालगी करना तो अच्छा नहीं है। हमारे ३३ को यही रोग है। उसको और कोई काम तो है नहीं, समय-बेसमय मालिकों की मण्डली में उसका जाना-आना लगा ही हुआ है। डर लगता है, न जाने कब किसके नाम क्या लगा बैठे। और फिर उन हज़रत के घर की ख़बर अगर…

सरदार—आज अब समय नहीं है, जल्दी जाओ।

मुखिया—तो राम राम सरदार। [लौटकर] एक बात है! उस टोले का ८८ उस दिन महज़ तीस रुपये पर घुसा, लेकिन दो साल जाते-न-जाते आज उसकी आमदनी ऊपरी पावना समेत अधिक नहीं तो डेढ़-दो हज़ार माहवार तो होगी ही। हुज़ूर लोगों का मन सीधा है, देवतों का-सा भोला दिल है, स्तुति सुन-कर ही भूल जाते हैं। साष्टांग प्रणाम की घटा देखकर ही···

सरदार—अच्छा-अच्छा, ये बातें कल होंगी।

मुखिया—मेरे तो हुज़ूर, दया-धरम है, मैं उसकी रोटी मारने को नहीं कहता, किन्तु उसे खज़ाने के काम में रखना ठीक हो रहा है कि नहीं, सो एक बार सोच देखें। हमारा विष्णुदत्त उसकी रग-रग का हाल जानता है, उसे बुलाकर···

सरदार—आज ही बुलाऊँगा, तुम जाओ।

मुखिया—हुज़ूर, मेरा मँझला लड़का अब लायक हो गया है। प्रणाम करने आया था, तीन दिन तक चक्कर काटकर दर्शन न पाकर लौट गया है। बड़े मन के दुख में है सरकार। हुज़ूर के भोग के लिए मेरी पतोहू ने हाथ की तैयार की हुई साँची कुम्हड़े की···

सरदार—अच्छा, परसों आने को कहो। भेंट होगी।

[**मुखिया का प्रस्थान**

[**मझले सरदार का प्रवेश**]

मझला सरदार—नाच वाली और बजनियों को बगीचे में भेजकर आ रहा हूँ।

सरदार—और रंजन का वह कितनी दूर तक···

मझला सरदार—यह सब काम मुझसे नहीं होते। छोटे सरदार ने स्वयं पसन्द करके अपने ऊपर उसका भार लिया है। अब तक उसका···

सरदार—राजा क्या···

मझला सरदार—राजा निश्चय ही नहीं समझ सके। दस जनों में मिलकर उसे···किन्तु इस तरह राजा को धोखा देना मैं तो उचित नहीं समझता।

सरदार—राजा के प्रति हमारा तो कर्तव्य है उसीके लिए राजा को धोखा देना ज़रूरी होता है। उसकी जवाबदेही मेरी है। लेकिन अब उस लड़की को बिना विलम्ब···

मझला सरदार—नहीं-नहीं, ये बातें मेरे साथ नहीं। जिस मुखिया पर वह भार दिया गया है वह उपयुक्त आदमी है, कैसा भी गन्दगी-भरा काम क्यों न हो, वह एकदम नहीं हिचकता।

सरदार—केनाराम गोसाईं क्या रंजन की बात जानता है?

मझला सरदार—अन्दाज़ पर सभी जानता है, साफ जानना नहीं चाहता।

सरदार—सो क्यों?

मझला सरदार—कहीं 'नहीं जानता' कहने का रास्ता बन्द न हो जाए, इसीलिए।

सरदार—बन्द अगर हो ही गया तो क्या?

मझला सरदार—नहीं समझे? हम लोगों का तो सिर्फ एक ही चेहरा है—सरदार का चेहरा। किन्तु उसकी एक पीठ की ओर गुसाईं का चेहरा, दूसरी ओर सरदार का। रामनामा ज़रा-सा उलझा नहीं कि वह फांस बन जाता है। इसीलिए सरदारी धर्म का

पालन अपने से ही छिपाकर करना होता है, ऐसा करने से नाम-जप के समय ज़्यादा दिक्कत नहीं होती।

सरदार—नाम-जप छोड़ ही देता, तो क्या होता ?

मझला सरदार—लेकिन इधर उसका मन तो धर्मभीरु है, रक्त चाहे जैसा हो। इसीलिए, स्पष्ट भाव से नाम-जप और अस्पष्ट भाव से सरदारी करने से वह स्वस्थ रहता है। वह है, इसलिए हमारा देवता आराम में है, उसका कलंक ढका हुआ है, नहीं तो उसका चेहरा अच्छा नहीं दिखता।

सरदार—मझले सरदार, मैं देख रहा हूँ कि तुम्हारे रक्त के साथ भी सरदारो के रक्त का मेल अभी तक नहीं बैठा।

मझला सरदार—रक्त सूखते ही यह बला जाती रहेगी, अब भी यह आशा है। लेकिन आज भी मैं तुम्हारे उस ३२१ को बर्दाश्त नहीं कर सकता। जिसे दूर से चिमटे से पकड़ने पर भी घृणा मालूम होती है, उसीको जब सभा में सुहृद कहकर छाती से लगाना पड़ता है, तब किसी भी तीर्थ के जल से हज़ार स्नान करने पर भी अपने को पवित्र समझना कठिन हो जाता है।...वह देखो, नंदिनी आ रही है।

सरदार—चले आओ मझले सरदार !

मझला सरदार—क्यों डर काहे का है ?

सरदार—तुम्हारा विश्वास नहीं; मुझे मालूम है तुम्हारी आँखों में नंदिनी का नशा छाया हुआ है।

मझला सरदार—लेकिन तुम्हें नहीं मालूम कि तुम्हारी आँखों में भी कर्तव्य के रंग के साथ कुछ थोड़ा-सा लाल कनेर का रंग

भी मिला हुआ है, इसीलिए उसकी लालिमा इतनी भयंकर हो उठी है।

सरदार—होगा। मन की बात मन खुद भी नहीं जानता। तुम चले आओ मेरे साथ।

[दोनों का प्रस्थान

[नंदिनी का प्रवेश]

नंदिनी—देखते-देखते सिंदूरिया बादलों से आज की गोधूली लाल हो उठी। यही क्या हम दोनों के मिलन का रंग है? मेरा सिंदूर ही मानो सारे आसमान में फैल गया है! [खिड़की को धक्का मारके] जब तक नहीं सुनोगे तब तक दिन रात यहाँ पड़ी रहूँगी।

[गोसाईं का प्रवेश]

गोसाईं—किसे ठेल रही हो?

नंदिनी—तुम्हारे उस अजगर को, जो ओट में छिपा हुआ आदमी निगला करता है।

गोसाईं—हरि! हरि!! भगवान् जब छोटे को मारना चाहते हैं, तो उसके छोटे मुँह में बड़ी बात बैठा देते हैं। देखो नंदिनी, तुम विश्वास करो, मैं तुम्हारी मंगल-कामना करता हूँ।

नंदिनी—इससे मेरा मंगल नहीं होगा।

गोसाईं—आओ मेरे ठाकुर-घर में तुम्हें हरिनाम सुनाऊँ।

नंदिनी—सिर्फ नाम लेकर मैं क्या करूँगी?

गोसाईं—मन में शांति पाओगी।

नंदिनी—यदि मैं शान्ति पाऊँ तो मुझे धिक्कार है। मैं इस दरवाजे पर इन्तज़ार करती बैठी रहूँगी।

गोसाईं—देवता की अपेक्षा मनुष्य पर तुम्हारा विश्वास अधिक है ?

नंदिनी—तुम्हारा वह ध्वज-दण्ड का देवता कभी नर्म नहीं होगा। लेकिन जाल की ओट में बैठा हुआ आदमी क्या सदा-सर्वदा जाल में ही बँधा रहेगा ? जाओ, जाओ, जाओ ! मनुष्य का प्राण नोचकर उसे नाम-जप से भुलवाना ही तुम्हारा रोज़गार है।

[गोसाईं का प्रस्थान

[फागूलाल और चंद्रा का प्रवेश]

फागूलाल—विशू तुम्हारे साथ आया था, वह इस समय कहाँ है ? सच बताओ।

नंदिनी—उसे गिरफ्तार कर ले गए हैं।

चंद्रा—राक्षसी, तूने ही उसे पकड़वा दिया है, तू उनकी चर है।

नंदिनी—कौनसा मुँह लेकर तुम ऐसी बात कह सकीं ?

चंद्रा—नहीं तो यहाँ तेरा क्या काम है ? खाली सबका मन भुलाती घूमती फिरती है !

फागूलाल—यहाँ सभी सबको सन्देह की नजरों से देखते हैं, लेकिन फिर भी मैं तुम्हारे ऊपर विश्वास करके आया हूँ। मन-ही-मन तुम्हें…अच्छा, जाने भी दो इस बात को। लेकिन आज जाने कैसा लग रहा है !

नंदिनी—लगता होगा ! मेरे साथ आकर ही वह आफत में

फंस गया। तुम लोगों के साथ रहते वह निरापद् था, यह बात उसने खुद कही।

चंद्रा—तब क्यों उसे फुसला लायी, सत्यानाशी !

नंदिनी—क्या करूँ, उसने कहा था कि मुझे मुक्ति चाहिए।

चंद्रा—अच्छी मुक्ति दी है उसे !

नंदिनी—मैं तो उसकी सारी बात समझ नहीं पाती चंद्रा ! उसने मुझसे क्यों कहा कि विपत्ति के बीच डूब जाने पर मुक्ति मिलती है ? फागूलाल, जो आदमी निरापद् होने की मार से मुक्ति चाहता है, उसे मैं बचाऊँ कैसे ?

चंद्रा—मैं यह सब नहीं समझती। उसे यदि लौटा नहीं ला सकी तो तू मरेगी, मरेगी ! तेरे इस सुन्दर मुखड़े को देखकर मैं नहीं भूलती।

नंदिनी—मैं तुम लोगों के साथ जाऊँगी।

फागूलाल—क्या करने ?

नंदिनी—तोड़ने के लिए।

चंद्रा—बहुत तोड़ चुकी मायाविनी ! अब और की ज़रूरत नहीं।

[गोकुल का प्रवेश]

गोकुल—सबसे पहले इस डाइन को जलाके मारना होगा।

चंद्रा—मारोगे ? उससे इसकी सज़ा पूरी न होगी। जिस रूप के बल पर वह सत्यानाश किया करती है, उस रूप को बिगाड़ दो। खुरपे से जैसे घास छील देते हैं, उसी तरह उसका रूप छीलकर फेंक दो।

गोकुल—सो कर सकता हूँ। एक बार इस हथौड़ी के घुमाव…

फागूलाल—खबरदार! उसके बदन पर जो हाथ लगाया तो...

नंदिनी—फागूलाल, तुम रुको। यह डरपोक है। मुझसे डरता है, इसीलिए मुझे मारना चाहता है। मैं उसकी मार से नहीं डरती। क्या कर सकता है, कर ले कापुरुष!

गोकुल—फागूलाल, अब भी तुम नहीं चेते! सरदार को तुम दुश्मन समझते हो! जो हो, जो दुश्मन सहज दुश्मन है, उसे मैं श्रद्धा करता हूँ, परन्तु तुम्हारी इस मिठमुँहिया सुन्दरी...

नंदिनी—सरदार को श्रद्धा करते हो! तलवे को तलवे का कीचड़ जैसे श्रद्धा करता है! जो गुलाम है वह कभी श्रद्धा नहीं कर सकता।

फागूलाल— गोकुल, तुम्हें अपना पौरुष दिखाने का समय आ गया है। लेकिन लड़की पर नहीं, चलो मेरे साथ।

[फागूलाल, चंद्रा और गोकुल का प्रस्थान

[आदमियों के एक दल का प्रवेश]

नंदिनी—क्यों जी, तुम लोग कहाँ जा रहे हो?

१—ध्वजा-पूजा का नैवेद्य ले जा रहे हैं।

नंदिनी—रंजन को देखा है?

२—उसे पाँच दिन आगे एक बार देखा था, फिर नहीं देखा। उनसे पूछो, शायद वे बता सकें।

नंदिनी—वे कौन हैं?

३—वे सरदार के भोज में शराब ले जा रहे हैं।

[इस दल का प्रस्थान

[दूसरे दल का प्रवेश]

नंदिनी—ओ लाल टोपीवाले, तुमने रंजन को देखा है?

१—उस दिन रात को शम्भू मुखिया के घर देखा था।

नंदिनी—इस समय वह कहाँ है ?

२—वह जो सरदारिनों के भोज में साज लेकर जा रहे हैं, उनसे पूछो, वे ऐसी बहुतेरी बातें सुन सकते हैं, जो हमारे कानों तक नहीं पहुँचतीं।

[इस दल का प्रस्थान

[तीसरे दल का प्रवेश]

नंदिनी—क्यों जी, रंजन को इन्होंने कहाँ रखा है, तुम्हें मालूम है ?

१—चुप, चुप !

नंदिनी—तुम ज़रूर जानते हो, मुझे बताना ही पड़ेगा।

२—हमारे कान में जो कुछ घुसता है, वह मुँह से नहीं निकलता, और इसीलिए हम टिके हुए हैं। वे जो हथियारों का बोझ लेकर आ रहे हैं, उनसे पूछो।

[इस दल का प्रस्थान

[चौथे दल का प्रवेश]

नंदिनी—अजी, ज़रा रुको ! बताते जाओ रंजन कहाँ है ?

१—सुनो बताता हूँ। लग्न हो आया है। ध्वजा-पूजा के लिए राजा को निकलना ही पड़ेगा। उन्हींसे पूछो। हम लोग शुरू का जानते हैं, आखिर का नहीं।

[प्रस्थान

नंदिनी—[खिड़की पर धक्का मारकर] समय हो गया है, द्वार खोलो।

नेपथ्य से—फिर तुम असमय में आयी हो। अभी चली जाओ, जाओ !

नंदिनी—इन्तज़ार करने का समय नहीं है, मेरी बात सुननी ही पड़ेगी।

नेपथ्य से—क्या कहना है, बाहर से ही कहकर चली जाओ।

नंदिनी—बाहर से मेरी बात का सुर तुम्हारे कानों तक नहीं पहुँच पाता।

नेपथ्य से—आज ध्वजा-पूजा का दिन है, मेरा मन विक्षिप्त मत करो। पूजा में व्याघात होगा। जाओ, जाओ, अभी जाओ !

नंदिनी—मेरा डर जाता रहा है, इस तरह तुम खदेड़ नहीं सकते। मरूँ वह भी अच्छा है, लेकिन दरवाज़ा खुलवाये बिना यहाँ से मैं हिलती नहीं।

नेपथ्य से—शायद रंजन को चाहती हो ? सरदार से कह दिया है, वह अभी उसे ला देगा ! पूजा के लिए जाने लगूँ, तो दरवाज़े पर खड़ी न रहना। नहीं तो विपद् आएगी।

नंदिनी—देवता को समय का अभाव नहीं है, वे पूजा के लिए युग-युगान्तर तक इन्तज़ार कर सकते हैं। मनुष्य का दुःख तो मनुष्य का सहारा चाहता है। उसका समय थोड़ा होता है।

नेपथ्य से—मैं थका हूँ, बुरी तरह थका हूँ। ध्वजा-पूजा में जाकर थकान मिटा आऊँगा। मुझे कमज़ोर मत बनाओ। इस समय तुमने बाधा दी, तो रथ के पहिये के नीचे धुर्रा उड़ जाएगा तुम्हारा !

नंदिनी—छाती पर से पहिया निकल जाए, मैं नहीं हिलती।

नेपथ्य से—नंदिनी, तुमने मेरे यहाँ प्रश्रय पाया है, इसीलिए नहीं डरतीं। लेकिन आज डरना ही होगा।

नंदिनी—मैं चाहती हूँ कि जैसे सबको डर दिखाते फिरते हो, वैसे ही मुझे भी डराओ। तुम्हारे प्रश्रय को मैं घृणा करती हूँ।

नेपथ्य से—घृणा करती हो ? स्पर्धा चूर्ण-विचूर्ण हो जाएगी। तुम्हें अपना परिचय दे दूँ, ऐसा समय आ गया है।

नंदिनी—परिचय की ही इन्तज़ारी में हूँ, खोलो द्वार। [द्वार का खुलना] यह क्या ! वह कौन पड़ा हुआ है, रंजन जैसा देख रही हूँ जैसे।

राजा—क्या कहा, रंजन ? रंजन ? यह रंजन कभी नहीं हो सकता।

नंदिनी—हाँ राजा, यही तो मेरा रंजन है।

राजा—उसने अपना नाम क्यों नहीं बताया ? इतनी हिमाक़त के साथ क्यों आया ?

नंदिनी—जागो रंजन, मैं आयी हूँ तुम्हारी सखी। राजा, वह जग क्यों नहीं रहा ?

राजा—धोखा दिया है। मुझे इन सबों ने धोखा दिया है। अनर्थ हो गया ! मेरा अपना ही यंत्र मुझे नहीं मानता। कौन है रे, बुला सरदार को, बाँधकर ले आ उसे।

नंदिनी—राजा, रंजन को जगा दो। सब कहते हैं तुम जादू जानते हो, उसे जगा दो !

राजा—मैंने यमराज से जादू सीखा है, जगा नहीं सकता। जागरण मिटा दे सकता हूँ।

नंदिनी—तो मुझे भी उसी नींद में सुला दो ! मैं नहीं सह सकती। यह कैसा सत्यानाश कर दिया तुमने ?

राजा—मैंने यौवन को मारा है—इतने दिनों से अपनी सारी ताक़त लगाकर केवल यौवन को मारता आया हूँ। मुझे मेरे यौवन का अभिशाप लगा है।

नंदिनी—उसने क्या मेरा नाम नहीं बताया ?

राजा—इस तरह बताया था कि मैं सह नहीं सका। अचानक मेरे रग-रग में जैसे आग सुलग गई हो।

नंदिनी—[रंजन के प्रति] वीर मेरे, यह नीलकण्ठ का पर तुम्हारी चूड़ा पर मैंने पहना दिया। आज से तुम्हारी विजय-यात्रा शुरू हुई है। उस यात्रा की वाहन मैं हूँ। आहा, यह उस लाल कनेर की मंजरी इसके हाथों में है। तब तो किशोर ने उसे देखा था। वह कहाँ गया ? राजा, कहाँ गया वह बालक ?

राजा—कौन बालक ?

नंदिनी—जिसने रंजन को यह मंजरी दी है ?

राजा—अजीब लड़का था वह। लड़की की तरह तो उसका अदनार मुख था, किन्तु बातें बड़ी उद्धत थीं। हिमाक़त तो देखो, वह मेरे ऊपर टूट पड़ने आया था।

नंदिनी—फिर क्या हुआ ? क्या हुआ उसका ? बोलो, क्या हुआ ? तुम्हें बताना ही पड़ेगा, चुप क्यों हो ?

राजा—वह बुद्बुद् की तरह लुप्त हो गया।

नंदिनी—राजा, अब समय हो गया।

राजा—काहे का समय ?

नंदिनी—मेरी सारी शक्ति के साथ तुम्हारी लड़ाई होगी।

राजा—मेरे साथ लड़ोगी तुम ? तुमको तो मैं इसी क्षण मार सकता हूँ।

नंदिनी—उसके बाद प्रत्येक क्षण मेरा वह मरना तुम्हें मारता रहेगा। मेरे कोई अस्त्र नहीं है, मेरा अस्त्र मृत्यु है।

राजा—तो फिर पास आओ। मेरे ऊपर विश्वास करने की हिम्मत है? चलो मेरे साथ। आज मुझे अपना साथी बना लो, नंदिनी!

नंदिनी—कहाँ जाना होगा?

राजा—मेरे विरुद्ध लड़ाई करने, किन्तु मेरे ही हाथों में हाथ रख कर। समझीं नहीं तुम? वह लड़ाई शुरू हो गई है। यह है मेरी ध्वजा, मैं तोड़ देता हूँ इसका दण्ड और तुम फाड़ डालो इसका केतन। मेरे ही हाथों में तुम्हारा हाथ आकर मुझे मारे। मार डाले, अच्छी तरह रगड़ डाले! इसीमें मुक्ति है!

दल के आदमी—महाराज यह क्या अनर्थ है, कैसी उन्मत्तता है यह! ध्वजा तोड़ दी आपने। यह हमारे देवता की ध्वजा, जिसके अजेय शाल ने एक ओर पृथ्वी को और दूसरी ओर स्वर्ग को बेध डाला है, वही हमारा परम पवित्र ध्वजदण्ड! पूजा के दिन यह कैसा घोर पाप है! चल रे चल, सरदारों को खबर दें।

[प्रस्थान

राजा—अब भी बहुत-कुछ तोड़ना बाकी है, तुम भी चलोगी मेरे साथ, नंदिनी, प्रलय-पथ में मेरी दीप-शिखा!

नंदिनी—मैं चलूंगी।

[फागूलाल का प्रवेश]

फागूलाल—विशू को वे किसी तरह नहीं छोड़ेंगे। यह कौन है! यही राजा है क्या! डाकिनी, अब इसके साथ परामर्श चल रहा है! विश्वासघातिनी!

राजा—तुम्हें क्या हो गया है ? क्या करने निकले हो ?

फागूलाल—बंदीशाला का दरवाज़ा तोड़ने। मरेंगे, लेकिन लौटेंगे नहीं।

राजा—लौटेंगे क्यों ? तोड़ने के रास्ते में भी चला हूँ। वह देखो उसका पहला चिह्न—मेरी तोड़ी हुई ध्वजा, मेरी अन्तिम कीर्ति।

फागूलाल—नंदिनी, ठीक-ठीक नहीं समझ सका। हम सीधे आदमी हैं, दया करो, हमें धोखा मत दो। तुम तो हमारे घर की लड़की हो।

नंदिनी—फागूभाई, तुमने तो मृत्यु का ही प्रण किया है। धोखा खाने में तो कुछ भी बाक़ी नहीं रखा है !

फागूलाल—नंदिनी, तब तुम भी हमारे साथ चलो।

नंदिनी—मैं तो इसीलिए बची हूँ। फागूलाल मैंने रंजन को तुम सबके बीच ले आना चाहा था। वह देखो, आ गया है मेरा वीर—मृत्यु को तुच्छ करके !

फागूलाल—सर्वनाश ! वही क्या रंजन है ? निःशब्द पड़ा हुआ है।

नंदिनी—निःशब्द नहीं है। मृत्यु में उसका अपराजित कण्ठ में सुन रही हूँ। रंजन जी उठेगा, वह कभी मर नहीं सकता !

फागूलाल—हाय रे नंदिनी, मेरी सुन्दरी ! इसीलिए क्या तू इतने दिनों से बाट जोह रही थी, हमारे इस अन्ध नरक में ?

नंदिनी—उसके आने की राह देख रही थी, वह तो आ गया, वह फिर आने की तैयारी करेगा, वह फिर आएगा। चंद्रा कहाँ है, फागूलाल ?

फागूलाल—वह गोकुल को लेकर सरदार के वहाँ रोने-धोने गई है। सरदार पर उनका अगाध विश्वास है। लेकिन महाराज, तुमने ग़लत तो नहीं समझा ? हम लोग तुम्हारी ही बन्दीशाला तोड़ने निकले हैं।

राजा—हाँ, मेरी ही बन्दीशाला। तुम-हम दोनों मिलकर काम करेंगे। यह काम अकेला तुम्हारे वश का नहीं है।

फागूलाल—सरदारों ने ख़बर पायी नहीं कि रोकने पहुँचेंगे।

राजा—उनके साथ मेरी लड़ाई है।

फागूलाल—सेना वाले तुम्हें मानेंगे नहीं।

राजा—अकेला लड़ूंगा। साथ में तुम लोग तो हो।

फागूलाल—जीत सकोगे ?

राजा—मर तो सकूंगा न ! इतने दिन बाद मरने का मतलब समझ सका हूँ।—मैं बच गया हूँ !

फागूलाल—राजा, गर्जन सुन रहे हो ?

राजा—वह देख रहा हूँ, सरदार सेना लेकर आ रहा है। इतनी जल्दी कैसे यह संभव हुआ ? आगे से ही तैयार था, सिर्फ मैं ही नहीं जानता था। मुझे धोखा दिया है ! मेरी ही शक्ति से बाँधा है मुझे।

फागूलाल—मेरा दल-बल तो अभी आया नहीं।

राजा—सरदार ने ज़रूर उन्हें रोक रखा है। वे अब नहीं आ सकेंगे।

नंदिनी—मन में था कि वे विशू पगले को मेरे पास ले आ देंगे। सो क्या अब संभव नहीं है ?

राजा—उपाय नहीं है। राह-घाट रोकने में सरदार जैसा उस्ताद मैंने किसी को नहीं देखा।

फागूलाल—तो फिर चलो नंदिनी, तुम्हें सुरक्षित जगह में रख आऊँ, फिर जो होना होगा सो होगा। सरदार ने तुम्हें देखा तो रक्षा नहीं है।

नंदिनी—अकेली मुझको ही सुरक्षितता के निर्वासन में भेजोगे? फागूलाल, तुमसे तो सरदार अच्छा, उसीने मेरी जय-यात्रा का पथ खोल दिया है। सरदार, सरदार! देखो, उसने बर्छे की नोक पर मेरी कुंद फूल की माला झुला रखी है। उस माला को मैं अपनी छाती के रक्त से लाल कनेर के रंग का बना जाऊँगी। सरदार ने मुझे देख लिया है। जय, रंजन की जय!

[द्रुत प्रस्थान

राजा—नंदिनी!

[प्रस्थान

[अध्यापक का प्रवेश]

फागूलाल—कहाँ दौड़े जा रहे हो अध्यापक?

अध्यापक—किसी ने बताया—राजा इतने दिन बाद चरम प्राण का संधान पाकर निकल पड़ा है। मैं भी पोथी-पत्रा फेंककर साथ हो लेने चला आया।

फागूलाल—राजा तो वह मरने गया, उसने नंदिनी की आवाज़ सुनी है।

अध्यापक—उसका जाल फट गया है। नंदिनी कहाँ है?

फागूलाल—वह सबके आगे गयी है। अब तो उस तक पहुँचना मुश्किल है।

अध्यापक—अभी तो पहुँचा जा सकता है। अब वह तरह नहीं दे सकती। उसे पकड़ूँगा।

[प्रस्थान

[विशू का प्रवेश]

विशू—फागूलाल, नंदिनी कहाँ है ?

फागूलाल—तुम कैसे आये ?

विशू—हमारे कारीगरों ने बन्दीशाला तोड़ दी है। वे उधर लड़ने जा रहे हैं ! मैं नंदिनी को खोजने आया। वह कहाँ है ?

फागूलाल—वह सबके आगे चली गई है।

विशू—कहाँ ?

फागूलाल—अन्तिम मुक्ति में।

विशू—वह तो रंजन है !

फागूलाल—धूल में देख रहे हो उसके रक्त की रेखा ?

विशू—समझ गया! वही इन दोनों के परम मिलन की रक्त राखी है ! इसके बाद अकेले महायात्रा का मेरा समय आ गया। खूब सम्भव, मेरी पगली गान सुनना चाहेगी ! आ रे भाई, अब लड़ाई पर चल।

फागूलाल—नंदिनी की जय !

विशू—नंदिनी की जय !

फागूलाल—और वह देखो, धूल में लोट रहा है उसके लाल कनेर का कंकण ! दाहिने हाथ से न जाने कब खिसक पड़ा है ! आज अपना हाथ खाली करके वह चली गई।

विशू—मैंने उससे कहा था कि उसके हाथ से कुछ लूंगा नहीं, किन्तु लेना पड़ा यह उसका आखिरी दान।

[प्रस्थान

[दूर गान सुनाई देता है]

पौष तुम्हें बुला रहा है, आ जाओ, आ जाओ !
उसकी पकी फ़सल की डलिया पर धूल का आंचल
छा गया है।[16]

●

गीत

१– पौष तोदेर डाक दियेछे आय रे चले
आय, आय, आय !
डाला रे तार भरेछे आज पाका फसले
मरि, हाय, हाय, हाय ! पृष्ठ २६

२– हावार नेशाय उठलो मेते
दिग्वधूरा धानेर खेते
रोदेर सोना छड़िये पड़े माटिर आँचले—
मरि, हाय, हाय, हाय ! पृष्ठ २६

३– माठेर बांशि शुने शुने आकाश खुसि हलो
घरेते आज के रबे गो। खोलो दुयार खोलो। पृष्ठ २६

४– आलोर खुशी उठालो जेगे
धानेर शीषे शिशिर लेगे,
धरार खुशी धरे ना गो, ओइ-जे उथले,
मरि, हाय, हाय, हाय ! पृष्ठ २८

५– मोर स्वपन-तरीर के तुइ नेये।
लागलो पाले नेशार हावा, पागल परान चले गेये।
आमाय भुलिये दिये या
तोर दुलिये दिये ना,
तोर सुदूर घाटे चल रे बेये। पृष्ठ ३५

६— आमार भावना तो सब मिछे,
आमार सब पड़े थाक् पिछे।
तोमार घोम्टा खुले दाओ,
तोमार नयन तुले चाओ,
दाओ हासिते मोर पराण छेये। पृष्ठ ३५

७— तोर प्राणेर-रस तो शुकिये गेलो ओरे,
तबे मरण-रसे ने पेयाला भरे।
से-ये चितार आगुन गालिये ढाला,
सब ज्वलनेर मेटाय ज्वाला,
सब शून्यके से अट्टहेसे देय ये रंगीन करे। पृष्ठ ३८

८— तोर सूर्य छिलो गहन मेघेर माझे,
तोर दिन मेरेछे अकाजेरइ काजे,
तबे आसुक्-ना सेइ तिमिर राति,
लुप्ति-नेशार चरम साथी,
तोर क्लान्त आँखि दिक् से
ढाकि दिक्-भोलाबार घोरे। पृष्ठ ३८

९— तोमाय गान शोनाबो ताइ तो आमाय जागिये राखो,
ओगो घुम-भाङानिया !
बुके चमक दिये ताइ तो डाको,
ओगो दुख-जागानिया !
एलो आँधार घिरे
पाखी एलो नीड़े,
तरी गेलो तीरे

शुधु आमार हिया बिराम पाय नाको
ओगो दुख-जागानिया ! पृष्ठ ५०

१०— आमार काजेर माझे माझे
कान्नाधरार दोला तुमि थामते दिले ना ये।
आमाय परश क'रे
प्राण सुधाय भ'रे
तुमि जाओ ये सरे,
बुझि आमार व्यथार आड़ालेते दाँड़िये थाको,
ओगो दुख-जागानिया ! पृष्ठ ५०

११—ओ चाँद, चोखेर जलेर लाग्लो जोयार दुखेर पारावारे,
हलो कानाय कानाय कानाकानि एइ पारे ओइ पारे।
आमार तरी छिलो चेनास्कूले, बाँधन ताहार गेलो खुले,
तारे हावाय-हावाय निये गेलो कौन् अचेनार धारे। पृष्ठ ५१

१२— भालोबासि भालोबासि—
एइ सुरे काछे दूरे जले स्थले बाजाय बाँशी।
आकाशे कार बुकेर माझे
व्यथा बाजे,
दिगन्ते कार कालो आँखि
आँखिर जले जाय गो भासि। पृष्ठ ६२

१३— सेइ सुरे सागर-कूले
बाँधन खुले
अतल रोदन उठे दुले।

दिनांक Date	उधारकर्त्ता की संख्या Borrower's No.	दिनांक Date	उधारकर्त्ता की संख्या Borrower's No.